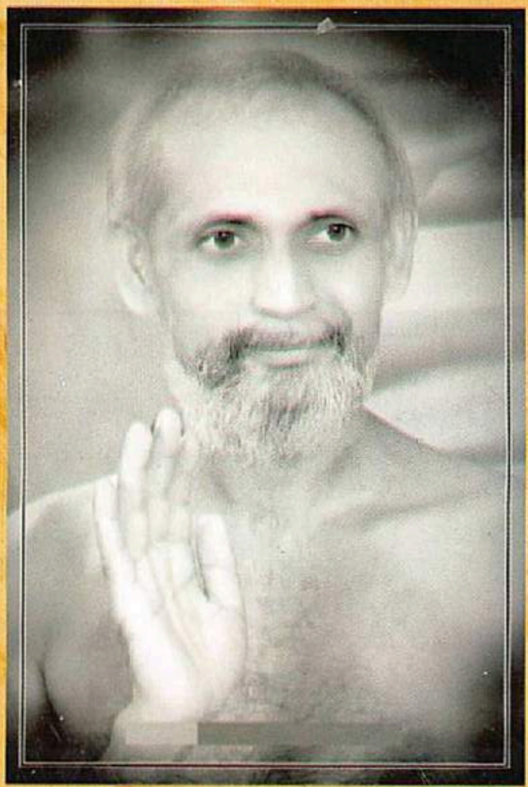

आचार्य वसुनन्दी मुनिराज

Print By : Saraswati Printer : 8561023344

श्री नंग-अनंग कुमार चरित्र

: संपादक :
आचार्य वसुनन्दी मुनिराज

प्रस्तुति : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

श्रीमान् देवदत्त विरचित

नंग-अनंग कुमार चरित्र

आचार्य वसुनन्दी मुनि

प्रस्तुति : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति

संस्करण : प्रथम - 1500 प्रतियाँ, सन् 2007
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
I.S.B.N. No.: 81-872880-86
निर्ग्रंथ ग्रंथमाला : ग्रंथाक-133
द्वितीय 1100 सन् 2015, जयपुर चातुर्मास

प.पू. श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज
के 53वें मुनि दीक्षा दिवस (25 जुलाई 2015)
के अवसर पर ज्ञानवर्द्धन हेतु प्रकाशित
ग्रंथांक-02

ग्रंथ	:	नंग-अनंग कुमार चरित्र
ग्रंथ प्रणेता	:	श्रीमान् देवदत्त
पावन आशीष	:	परम पूज्य राष्ट्रसंत श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज
सम्पादक	:	आचार्य वसुनन्दी मुनि
प्रकाशक	:	निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला e-mail : nirgranthmala@rediffmail.com
पुण्यार्जक	:	श्री ब्रजमोहन जी, विनोद कुमार जी तिजारिया
मूल्य	:	स्वाध्याय
ग्रंथ प्राप्ति स्थान	:	1. श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली, बौलखेड़ा, कामां (राज.) 2. श्री दिगम्बर जैन ऋषभदेव मंदिर, ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला-जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.) 3. आचार्य श्री वसुनंदी साहित्य सद, जय शांतिसागर निकेतन, मण्डोला, गाजियाबाद (उ.प्र.) 4. सरस्वती प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, चांदी की टकसाल, जयपुर (राज.)
टाइप व मुद्रक	:	बसन्त कुमार जैन, सरस्वती प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स बैंक के नीचे, हवा महल बाजार, आमेर रोड, चांदी की टकसाल, जयपुर मो.: 8561023344, E-mail : jainbasant02@gmail.com

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुडी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवान् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं-

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खणं।। 17।। द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमश: जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अत: जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य है। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं-

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा।। (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती है। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनं।। 43।। र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं, इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक सबंधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वाभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं वे अपने जीवन के साथ

खिलवाड़ तो करते ही हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्ति नित्य विनयपूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं, अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं। अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही है। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

"अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः जिन चरण चञ्चरीक
जयपुर (राज.)
16.11.2015

पुरोवाक्

— आचार्य वसुनन्दी मुनि

वस्तु तत्त्व/स्वभाव का प्रतिपादक होने से जैन दर्शन/धर्म अनादि–निधन है। इस धर्म का कोई संस्थापक नही है, और न ही समूल विध्वंसक। इस धर्म में अनादि काल से लेकर आज तक अनन्तानन्त प्रवर्तक हुए, जिन्हें जिन मत में तीर्थंकर कहा जाता है। ये तीर्थंकरादि महापुरुष इस धर्म का आश्रय लेकर व निर्दोष संयम साधना कर मुक्त हुए, हो रहे हैं एवं होते रहेंगे। 'तीर्थंकर' से आशय है जो धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करें तथा प्राणी मात्र को आत्म कल्याण की प्रेरणा देने में निमित्त बनें।

'तीर्थ' शब्द का अर्थ है जो तिराये भव समुद्र से, या संसार सागर से पार करे। रत्नत्रय ही निश्चय से तीर्थ–भूत हैं, क्योंकि रत्नत्रय ही धर्म है। धर्म ही संसार सागर से पार करने में समर्थ है। तीर्थ के दो भेद हैं व्यवहार तीर्थ व निश्चय तीर्थ। अथवा दूसरी प्रकार से चेतन तीर्थ व अचेतन तीर्थ। तीसरी प्रकार से चल तीर्थ व अचल तीर्थ। उपरोक्त सभी तीर्थ भव्य जीव को संसार से तिराने में कारण हैं।

जिनेन्द्र भगवान या जिन तीर्थंकर द्वारा चार प्रकार के चेतन तीर्थ कहे गये हैं। 1. मुनि, 2. आर्यिका, 3. श्रावक, 4. श्राविका। ये चारों ही तरण तारण जहाज हैं, प्रथम साक्षात् मोक्षमार्ग हैं तो शेष तीन परम्परा से मोक्षमार्गी हैं अचेतन तीर्थ के सामान्यतया दो भेद हैं। 1. सिद्ध क्षेत्र/निर्वाण भूमि, 2. अतिशय क्षेत्र।

सिद्धक्षेत्र — समस्त कर्मों से रहित सिद्ध परमेष्ठी/मुक्तात्मा लोकाग्र में जहां विराजमान होते हैं, वह तो सिद्ध क्षेत्र है ही, साथ ही उपचार से वह भी सिद्ध क्षेत्र ही है जहां से उन महान आत्माओं ने सर्व कर्मों का क्षय कर मोक्ष पद प्राप्त किया है यथा सम्मेद शिखर जी (ढाई द्वीप में विद्यमान–170 सम्मेद शिखर जी) ऊर्जयंत गिरि, कैलाश पर्वत, चम्पापुर, पावापुर, नैनागिरि, (रेसिंदी गिरी), द्रोणगिरि, कुण्डल गिरि, सोनागिरि (स्वर्णगिरि/श्रमण गिरि) मांगी तुंगी, मथुरा चौरासी, पटना जी, आहार ज़ी, बवानगजा/बड़वानी, सिद्धवर कूट, फलहोड़ी, बड़ा गांव, शत्रुंजय, श्री गजपंथा जी, मेंढ़गिरी, कुंथलगिरि इत्यादि।

अतिशय क्षेत्र — जहाँ तीर्थंकरादि महापुरुषों के गर्भ, जन्म, तप या ज्ञान सम्बन्धी कल्याणक या महोत्सव हुए, अथवा जहाँ जिनशासन क्षेत्र कहलाते हैं। अथवा जहाँ पर पूजा, अर्चना, भक्ति, स्तुति, वंदना आदि

करने से/परिणामों में अतिशय विशुद्धि बढ़े या सातिशय पुण्य का बन्ध हो या कोई अति आश्चर्यकारी घटना घट जाये वे अतिशय क्षेत्र कहलाते हैं।

यथा – अयोध्याजी, हस्तिनापुर, तिजारा, पद्मपुरी, अहिच्छत्र, श्रेयांस गिरि (सीरा पहाड़–श्री गिरि/शिवगिरि) सिहोंनिया, पपौरा जी, पटनागंज, खजुराहो, बरनावा, महावीर जी, शौरीपुर बटेश्वर, केशोराय पाटन, बजरंग गढ़, चाँदखेड़ी, करगुंवा जी, बंधा जी, पावाजी, वीना–बाराह, बंधाजी, कोनी जी, चंदेरी, गोला कोट, गोपाचल, श्रमण बेलगोला, जैनबद्री, मूढ़बद्री, धर्मस्थल, स्तवनिधि, नेमीगिरि, कुम्भोज बाहुबलि, अणिंदा पार्श्वनाथ, उदयगिरि, खण्डगिरि, देवगढ, रामटेक, रानीला, कासन, कम्पिला, राजमल, मरसल गंज इत्यादि।

प्रस्तुत ग्रंथ में करोड़ों मुनिराजों की साधना एवं सिद्धत्व से पुनीत स्वर्ण गिरि/श्रमण गिरि क्षेत्र व नंगसेन व अनंग सेन राजकुमारों का पावन जीवन चरित्र है। यह स्वर्ण/श्रमणगिरि क्षेत्र प्राचीनतम क्षेत्र कहा जाता है, यहां पर लगभग 108 जिन चैत्यालय निर्मित हैं। पर्वत पर लगभग 60 जिनालय हैं, नीचे गगन चुम्बी शिखरों से युक्त लगभग 28 जिनालय हैं। वात्सल्य दिवाकर आचार्य श्री विमल सागर जी व समाधि सम्राट आचार्य श्री सुमति सागर जी की व अन्य आचार्यों की पावन प्रेरणा से इस क्षेत्र पर काफी नव निर्माण व जीर्णोद्धार का कार्य भी सम्पन्न हुआ है। यह क्षेत्र आत्म साधक के लिए संयम, ध्यान, तप व ज्ञान की साधना के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहां पर अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ जी का आठ (8) बार समवशरण आया और वह समवशरण 32 लाख (बत्तीस लाख) वर्ष पर्यंत यहाँ रहा। ऐसा यह अत्यंत पावन क्षेत्र है। साढ़े पांच करोड़ मुनियों (अष्टम तीर्थंकर के काल से महावीर स्वामी के काल पर्यंत मोक्ष गये) की पवित्र रज कणों से यह आज भी परम पावन बना हुआ है।

प्रस्तुत ग्रंथ 'नंग अनंग कुमार चरित्र' कवि देवदत्त दीक्षित के द्वारा रचित है, इस छोटे से ग्रन्थ में भी कविराज ने गागर में सागर की तरह धर्म का मर्म भर दिया है। इस ग्रन्थ की संक्षिप्त कथा वस्तु इस प्रकार है।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सौधेय नामक देश में राजा अरिंजय व रानी विशाला न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करते थे। इनके नंग कुमार व अनंग कुमार नामक दो पुण्यात्मा, पराक्रमी एवं चरम शरीरी पुत्र थे।

इसी भरत क्षेत्र में मालव देशान्तर्गत उत्तम नगर था। जहां पर

धनञ्जय नाम का महामण्डलीक राजा अपनी रानी श्रीमती के साथ धर्म की रक्षा करता हुआ राज्य का संचालन करता था, अरिंजय आदि हजारों राजा इसके आधीन थे। इसी भरत क्षेत्र में तिलिंग नाम का देश है, जहां अमृत विजय राजा अपनी रानी अतिरूपा के साथ राज्य करते थे। किसी एक दिन तिलिंग देश के राजा अमृत विजय ने उत्तम पुर के राजा धनञ्जय राजा की ओर से नंग अनंग कुमार भी युद्ध हेतु आये। इन कुमारों ने अमृत विजय को पराजित कर दिया। तब अमृत विजय भाग कर वद्र देश में स्थित स्वर्णाचल पर विराजमान चन्द्रप्रभ भगवान के समवशरण में आ गया। वहां पर धनञ्जय, नंगसेन व अनंगसेन भी पहुंच गये। धनञ्जय ने भगवान से अपना व अमृत विजय का बैर का कारण पूछा— तब भगवान जिन चन्द्र ने इस प्रकार कहा –

पूर्व विदेह क्षेत्र के वत्सकावती देश की सूर्यपुरी नगरी में राजा हेमसेन व रानी प्रियसेना राज्य करते थे। इस राजा के पास विशाला नाम की नर्तकी थी, जिसका नाम सुनकर प्रभाकरी नगरी का राजा सोमसेन मूर्च्छित हो गया, और अपनी विजया रानी के होते भी नर्तकी के लिए राजा हेमसेन से युद्ध किया। युद्ध में पराजित हो राजा सोमसेन मुनि हो गया, और समाधि मरण कर सौधर्म स्वर्ग में प्रभाकर देव हुआ। किसी समय सफेद बाल देखकर हेमसेन ने भी दिगम्बर मुनि दीक्षा लेकर, समाधि सहित मरण को प्राप्त हो, सौधर्म स्वर्ग में ही देव हुआ। वहां से चयकर सोमसेन तो तुम धनञ्जय एवं हेमसेन अमृत विजय हुआ है। इस प्रकार धर्मोपदेश सुनकर राजा धनञ्जय, अमृत विजय, नंगसेन व अनंगसेन आदि 15000 (पन्द्रह हजार) राजा दिगम्बर मुनि हो गये। इस से सम्बन्धित ही एक अन्य कथा भी यहाँ कही जाती है।

उज्जयिनी नगरी में श्री दत्त राजा व विजयारानी राज्य करते थे, वे संतान हीन थे। एक दिन रानी विजया ने बालकों को देखा, जिससे उसे अपने पुत्र न होने से बड़ा दुख हुआ। उसी समय आदिगत व प्रभागत नाम के दो चारण ऋद्धि मुनिराज आहारार्थ वहां पधारे। तब राजा रानी ने उन्हें नवधा भक्ति से आहार दिया, जिससे वहाँ पंचाश्चर्य हुए। राजा ने महाराज से पूछा कि मेरे पुत्र होगा या नहीं? तब श्री मुनिराज ने कहा कि तुम स्वर्ग (सोना) गिरि की वंदना करो तब तुम्हारे पुत्र होगा। वह पर्वत सोने का ही है वह मिथ्यादृष्टि को ही पत्थर का दिखता है, सम्यग्दृष्टि को नहीं, तब श्री दत्त राजा का पड़ोसी एवं काकनी का राजा मानसेन

आशंकित हुए। और उन्होंने तुरंत ही मानभद्र वह अपराजित विद्याधरों को उसका एक टुकड़ा लेने भेजा। विद्याधर एक टुकड़ा लाये, वह स्वर्ण का ही था। तब राजा श्री दत्त ने उसकी पूजा की, एवं बत्तीस (32) हजार देशों में सोनागिरि क्षेत्र की वंदना के निमंत्रण पत्र भेजे। वहां से राजा लोग आये। 32 हजार अक्षौहिणी सेना के बराबर संघ के साथ श्रीदत्त राजा ने वंदना की। वहां विद्यमान भगवान चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की साक्षात् दिव्य ध्वनि सुनी। इससे सम्बन्धित एक कथा और यहां कही गई है। विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अलका पुरी नगरी में राजा पवनवेग रानी जयावती राज्य करते थे। तथा इसी श्रेणी की तिलक पुरी में राजा चिंतामति व रानी प्रभावती न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते थे। एक दिन चिंतामति ने पवन वेग का निमंत्रण किया। पवन वेग चिंतामति के यहां आया, और प्रभावती को देखकर मोहित हो गया तब पवन वेग ने प्रभावती का अपहरण कर लिया। निराश राजा चिंतामति ने 'ह्रीमान' पर्वत पर 'प्रज्ञप्ति' अजेय विद्या सिद्ध की। शीलवती प्रभावती अपनी धर्म रक्षा हेतु पंच नमस्कार मंत्र के ध्यान में संलग्न हो गई। प्रज्ञप्ति विद्या से पवन वेग को मार कर अपनी रानी प्रभावती को प्राप्त कर लिया विजयी चिंतामति जब वहां से जा रहा था तभी जिनेन्द्र भगवान के समवशरण में आया और धर्मोपदेश सुन वैराग्य को प्राप्त हो दिगम्बर मुनि हो गया। अन्य हजारों राजा भी मुनि हो गये। इस प्रकार तीन लाख मुनि हो गये। पांच दिन बाद श्री दत्त राजा अपने नगर को लौट आया।

एक दिन राजा श्री दत्त की रानी विजया ने स्वप्न में ऐरावत हाथी, कमलयुक्त लक्ष्मी, समुद्र एवं सिंह देखे जिनका फल सागर दत्त मुनि राज ने मोक्ष गामी, महापुण्यात्मा पुत्र का लाभ होना बताया। नव महीने बाद विजयारानी ने एक पुत्र को जन्म दिया सुवर्ण सम रंग होने से उसका नाम सुवर्ण भद्र रखा गया।

एक समय नंग सेन व अनंग सेन मुनिराज विहार करते हुए उज्जयिनी नगरी आये, तब श्री दत्त राजा ने उनसे जिन/मुनि दीक्षा ग्रहण की। राजा सुवर्ण भद्र बने, उन्होंने भी सोनागिरी/श्रमणगिरी की संघ सहित वंदना की। चिरकाल तक राज्य संचालन किया। एक दिन मेघ विघटन को देखकर वैराग्य को प्राप्त हुए। तब जिन/मुनि दीक्षा एवं

दुर्धर साधना कर पाँच हजार मुनियों के साथ मोक्ष पधारे। चन्द्रप्रभु भगवान के समय से चतुर्थकाल से अंत तक स्वर्ण गिरि/श्रमण गिरि से नंगसेन व अनंगसेन आदि पांच करोड़ मुनि मोक्ष पधारे।

कान्यकुब्ज कुलोत्पन्न दीक्षित देवदत्त कवि ने भट्टारक जिनेन्द्र भूषण की आज्ञा से आगम वाणी के अनुसार इस ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ 16 अध्याय एवं 1114 (ग्यारह सौ चौदह) श्लोकों द्वारा रचकर मार्गशीष सुदी 4 वि.सं. 1845 में पूर्ण हुआ। एवं इस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद बालचंद्र जी ने किया है, एतदर्थ उक्त उभय श्रावक धन्यवाद के पात्र हैं, उन्हें हार्दिक शुभाशीष, इस ग्रंथ के प्रकाशन के कार्य में ऐ. श्री विमुक्त सागर जी (मुनि श्री ज़िनानंद जी), क्षु. श्री विशंक सागर जी का सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ। अतएव उन्हें समाधिरस्तु आशीर्वाद।

इसके अतिरिक्त मुद्रक श्री सरस्वती प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स व प्रकाशक निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति को आशीर्वाद। इस कार्य में अन्य भी निस्वार्थ, सद् श्रद्धालु महानुभाव यत्किचिंत् भी सहयोगी रहे हैं उन्हें भी धर्म वृद्धि आशीर्वाद।

प्रस्तुत ग्रंथ 'नंग–अनंग कुमार चरित्र' के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक द्वारा जो त्रुटि रह गयी हों तो सकल संयमी विज्ञ जन मुझे क्षमाकर अपने सुझाव प्रेषित करने का पुरूषार्थ करें। तथा सुधी पाठक गण मराल के समान, नीर–क्षीर भेद विज्ञानी दृष्टि अपनाकर, गुण पिपासु, विनय पूर्वक ग्रंथ को आत्म कल्याण हेतु आद्योपांत पढ़ने का सम्यक् प्रयास करें।

प.पू. श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के 53वें मुनि दीक्षा दिवस के उपलक्ष्य में चातुर्मास 2015 के दौरान 53 शास्त्रों का प्रकाशन कराया गया जिसमें इस ग्रंथ का द्वितीय संस्करण समय की मांग को देखते हुए किया गया जिसके मुद्रण में श्री बसंत जैन सरस्वती प्रिंटर्स जयपुर को भी धर्म वृद्धि आशीर्वाद।

'अलमति विस्तरेण!'

भद्रं भूयात्

श्री शुभमिती कार्तिक शुक्ला 4
वी. नि. सं. 2542
विक्रम संवत – 2072

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः संयमानुरक्त
जिन, श्रुत, मुनि, वृषभ चरणचंचरीक,
15 नवम्बर 2015 जवाहर नगर, जयपुर

ॐ

श्री नंग-अनंग कुमार चरित्र

प्रथम अध्याय

श्री महागणपति को नमस्कार हो।
श्री शारदादेवी को नमस्कार हो।
श्री गुरु के चरण कमलों को नमस्कार हो।

अब श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (स्वर्णाचल माहात्म्य काव्य) लिखा जाता है।

जो मोक्षरूपी सिद्धि की प्राप्ति में एक कारण है, जो पर्वत कुलरूपी कमल वन को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्य है, जिसके ध्यान से समस्त पापों का समुद्र घड़े के बराबर छोटा हो जाता है, उस सुन्दर और ऊँचे सुवर्णगिरि की मैं वंदना करता हूँ।। 1।।

जम्बूद्वीप के उत्तम भरत क्षेत्र में वद्र नाम का देश है जिसे भाषा में बुंदेलों का देश कहते हैं। इस देश का पालन बड़े-बड़े समृद्ध राजा करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। यह देश नाना प्रकार की समृद्धियों से उसी प्रकार भरपूर है, जिस प्रकार समुद्र में रत्न भरे पड़े रहते हैं।। 2-3।।

यहाँ के ऊँचे-ऊँचे शिखर वाले पर्वत पथिकों को बड़े भले लगते हैं और वे ऐसे मालूम होते हैं जैसे वे तीरों को ही छू रहे हों। उन्हीं पर्वतों पर अनेक प्रकार के फूले-फले वृक्ष हैं, जो उन सज्जन पुरुषों की भाँति सुशोभित हैं, जिन्होंने पूर्वजन्म में धर्मोपार्जन किया हो, जो पथिक इन वृक्षों के नीचे से गुजरता है, उसे निर्लोभ दानी पुरुषों की भाँति ये प्रतिदिन

मीठे-मीठे फलों का दान करते है। इन पर सदा ही विविध प्रकार के पक्षियों का स्वर गूँजा करता है और उससे ये ऐसे मालूम होते हैं जैसे ब्राह्मण लोग वेदपाठ कर रहे हों। जब पथिक जन थक जाते हैं, तो ये अपनी दीर्घ शीतल छाया से उनकी थकान मिटा देते हैं और इस प्रकार अपना सब कुछ दान करने वाले सज्जन पुरुषों की भाँति सुशोभित होते हैं।।4-8।।

पर्वतों में पराई हिंसा करने में लगे रहने वाले, महान उग्र रूपवाले अथच दुर्दृश्य व्याघ्र दुर्जनों की भाँति नित्य ही गरजते रहते हैं।।9।।

इन्हीं पर्वतों पर शीतल जल वाली नदियाँ- जिनमें ऊँची-ऊँची लहरें देखी जाती हैं- सज्जनों की वृत्तियों की भाँति शोभित हैं। कभी-कभी उनमें घड़ियाल प्रकट हो जाते हैं और वे ऐसे मालूम होते हैं जैसे कभी भी पराजित न होने वाले सुन्दर विचार हों। अत्यन्त चंचल और चारों ओर फिरने वाली मछलियाँ तो कामीजनों के भावों जैसी शोभित होती हैं। जब पक्षियों के समूह नदियों के किनारे परस्पर क्रीड़ा करते हैं तो ये नदियाँ समुद्र की प्रधान रानियों जैसी लगती हैं।। 10-13।।

इन्हीं पर्वतों पर गंभीर जल से पूर्ण और इसलिए समुद्र से स्पर्धा करने वाले स्वच्छ सरोवर सज्जनों की भाँति हैं। वे सरोवर चंचल भौंरों से भरे खिले कमलों की आँखों से संसार के कौतुक को नित्य ही देखा करते हैं। जब पक्षी उनमें डूबते और उतरते हैं तो निर्धन की चंचल मनोकामना से प्रतीत होते हैं।। 14-16।।

उस वद्र देश में बड़े-बड़े नगर और ग्राम हैं। वे धन-धान्य से परिपूर्ण हैं, वहाँ की प्रजा सदा प्रसन्न रहती है इसीलिये वे देवग्राम जैसे मालूम होते हैं। घरों की दीवालों पर अनेक रंगों के चित्र बने हुए हैं और वे मनुष्यों के हृदय को निश्चित ही आकृष्ट कर लेते हैं। राजमार्ग तो महान् रम्य हैं और अनेक प्रकार की वस्तुओं के प्रदर्शन के कारण वे वस्तुओं की खरीद और बिक्री में व्यस्त धनी और सुखी प्रभावशाली मनुष्यों जैसे लगते हैं।।17-20।।

इस प्रकार अनेक प्रकार की समृद्धियों से परिपूर्ण वद्र नाम का देश मनुष्यों के हृदय को नित्य ही अपनी ओर आकृष्ट करता है।

इसी देश में स्वर्णाचल नामक पर्वत है। वह भव्य प्राणियों के दैनिक कल्याण में लगा रहता है और सिद्ध की भाँति उदित हुआ है। उसका आकार रम्य है, उसमें वृक्ष रम्य हैं, रम्य वस्तुएँ उसमें हैं, सिद्धिदाता है और इन्द्र की भाँति सुशोभित है।। 21-23।।

इस पर्वत पर समस्त तापों का हरण करने वाले चन्द्रचिह्न युक्त श्री चन्द्रप्रभदेव शरद ऋतु के चन्द्रमा की भाँति शोभायमान हैं। जिन्होंने कठोर तपस्या द्वारा घोर कर्मवन को जलाकर केवलज्ञान द्वारा दुर्लभ मोक्ष पदवी प्राप्त की, जिन्होंने घातिकर्मों का क्षय करके मनुष्यत्व को छोड़कर उत्तम देवत्व प्राप्त कर लिया है और केवल ज्ञान के उदय से जिन्होंने परमेश्वरत्व भी प्राप्त कर लिया है। जो दिव्यध्वनि के प्रभाव द्वारा अज्ञानांधकार को दूर कर सूर्य की भाँति सुशोभित हो रहे हैं। जिनके ध्यान से आंतरिक अंधकार का क्षय हो जाता है और ज्ञानसूर्य के उदय होने से सभी पदार्थों के सच्चे स्वरूप के दर्शन होते हैं। उन चन्द्रप्रभ देव के दर्शन से शरच्चन्द्र जैसी ही सर्वांग को प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। उनकी वंदना से प्राणी सब कुछ जानने लगता है, जिस प्रकार राजा के चरण कमलों की वंदना से अनुचर। उनको नमस्कार करने में चतुर पुरुष सभी प्राणियों में चतुर हो जाता है, वह पापों के नाश करने में भी चतुर हो जाता है और शत्रु भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।। 24-31।।

उनकी वंदना से दावाग्नि की भाँति ऐसी ज्वाला निकलती है कि सारे का सारा पापों का वन उसी क्षण भस्म हो जाता है। उनको नमस्कार करने से इस लोक में परमेश्वरत्व और संतोष प्राप्त होता है और फिर ऋतु तृष्णा की वही दशा होती है जो प्रचण्ड वायु के चलने पर तिनके की होती है। उनकी वंदना से भव्यों के मन में ऐसा सुख होता है जिसे संसार का कोई भी दुःख तिरस्कृत नहीं कर सकता। उनके चरण कमलों की शुद्ध भावों से पूजा करने वाले मनुष्यों की इन्द्र और देवगण भी पूजा

करते हैं। उस जगद्कर्ता को प्रेम से एक फूल भी समर्पित करने वाले मनुष्य को देव लोग रत्नों से पूजा करते हैं।। 32-36।।

इस प्रकार वह स्वर्णाचल पर्वत परमेश्वर अर्हंत् प्रभु से पृथ्वी पर सिद्धालय की भाँति सुशोभित है। इस स्थान से साढ़े पाँच करोड़ मुनिराज भव्य तप द्वारा कर्ममल को जलाकर सिद्ध हुए हैं।। 37-38।।

अब सबसे पहले परम पुरुष चन्द्रप्रभ तथा अन्य शुद्धात्मा एवं मुक्ति प्राप्त करने वाले मुनियों, गणधर, सरस्वती और ज्ञानरूपी गुरु तथा अन्य सभी गुरुओं को प्रेम से बार-बार प्रणाम करके स्वर्णाचल के माहात्म्य को सूचित करने वाली, भव्य जीवों को सुनने में सुखद, पापनाशनी, सभी प्रकार के कल्याण करने वाली, सब इच्छाओं की पूर्ति करने वाली कथा मैं देवदत्त नाम का कवीश्वर कहता हूँ।। 39-42।।

ग्रन्थ प्रसंग के कारण मैं यहाँ कथा, कथावाचक और श्रोता के लक्षण क्रम में कहूँगा। उन्हें सज्जन समझें।। 43।।

जिस कथा में अन्य अच्छे-अच्छे चरित्रों के साथ भगवान की कथा हो वह कथा गंगा की भाँति श्रोतामण्डल को पवित्र करती है। जिसमें धर्म का वर्णन हो, पापों का निराकरण हो सज्जन पुरुष उसे भव्यों का कल्याण करने वाली कथा कहते हैं। जिसके सुनने से मनुष्यों की प्रतिदिन धर्म के प्रति रुचि बढ़े, उसे सज्जन, सब पापों का नाश करने वाली कथा कहते हैं। ऐहिक विषयों से विराग और पारलौकिक सुख में अनुराग जिस कथा के श्रवण से बढ़े, विद्वान लोग उसे भी कथा कहते हैं।। 44-47।।

इस प्रकार कथा के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेने के कारण भव्य लोग सत्कथा ही सुनें, विपरीत नहीं।। 48।।

कथावाचक को शास्त्र और तत्त्व का जानने वाला होना चाहिए, सदा शास्त्र का अभ्यास करते रहना चाहिए, धर्म-कर्म में रुचिशील होना चाहिए, बुद्धिमान होना चाहिए स्पष्टभाषी, क्षोभरहित और मीठे स्वर का होना चाहिए। ऐसे कथावाचक विद्वानों द्वारा सम्मान प्राप्त करते हैं।। 49-50।।

जो श्रोता के संदेह को मिटा सके, भव्यों के चित्त को उपदेश से प्रसन्न कर सके, क्रोधी न हो, किसी के द्वारा प्रश्न उठाए जाने पर उत्तर देने में जो प्रमादी और आलसी न हो, ऐसा कथावाचक जिज्ञासुओं को प्रिय होता है।। 51-52।।

श्रोता में भी निम्न गुण होने चाहिए। वह श्रद्धावान हो, उसके विचार सुन्दर हों, उसका हृदय पवित्र हो, सत्कथा सुनने से उसे प्रसन्नता होती हो, उसे कथारूपी अमृत प्राप्त करने की तृष्णा सदा बनी रहती हो, अन्य वस्तुओं के प्रति उसे कोई तृष्णा न हो। तत्त्व के जान लेने पर उसकी आत्मा प्रसन्न हो उठती हो; न जानने पर हाथ जोड़ कर प्रश्न करता हो। मिष्ठभाषी हो, सुन न पाने पर फिर से सुनने की इच्छा हो और श्रुत का धारण करने वाला हो। ऐसा श्रोता इस लोक में सत्कथा से लाभ उठाता है।।53-56।।

श्री नंगानंग कुमार स्वर्णाचल की कथा में कथा के पूर्वोक्त सभी गुण हैं। उसी प्रकार इसके वक्ता और श्रोता में भी वक्ता और श्रोता के गुण होने चाहिए।।57।।

स्वर्णाचल की कथा में नंग और अनंग कुमारों का विशेष स्थान है, अतः प्रारंभ में, मैं उन्हीं की कथा कहूँगा। स्वर्णाचल की कथारूपी दीर्घ नदी में मेरी बुद्धिरूपी चींटी आचार्य कृत वाक्यों के पुल पर चढ़कर ही पार होगी। भट्टारक जिनेन्द्रभूषण ने मुझे इस कथा के लिखने का आदेश दिया है, अतः मैंने श्री नंगअनंग कुमार (स्वर्णाचल) की यह कथा सुन्दर शब्दों में गूँथी है।।58-60।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण श्रीब्रह्म हर्ष सागर के पुत्र भी भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (स्वर्णाचल-महात्म्य काव्य) में स्वर्णाचल कथा-प्रस्तावना नाम का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।। 1।।

प्रथम अध्याय समाप्त

दूसरा अध्याय

जम्बूद्वीप के उत्तम भरतक्षेत्र में यौधेय नाम का देश पृथ्वी के भूषण की तरह सुशोभित है। उस देश में श्री के दूसरे नगर जैसा ही धन और शोभा से पूर्ण एवं देखने में मनोहर श्रीपुर नाम का नगर है। वह नगर-धन-धान्य से भरपूर है, उनमें ऊँचे-ऊँचे सुन्दर महल हैं और अनेक उपवनों से सुशोभित सुन्दर राजमार्ग हैं। उसमें बड़े-बड़े कवि, नीतिज्ञ, सम्पन्न और भाग्यशाली मनुष्य निवास करते हैं। अपने यौवन से कामदेव की पत्नी रति के घमण्ड को जीत लेने वाली और स्थिर हुई बिजली की भाँति सुन्दर स्त्रियों से वह नगर अलंकृत है।। 1-5।।

वहाँ अरिंजय नाम का परम धार्मिक, नीतिवान, गुणवान और उसी प्रकार श्रीमान एवं भाग्यवान राजा राज्य करता था।। 6।।

उसके विशाला नाम की रानी थी। वह निर्मल गुणों से सचमुच विशाला थी और रूप और यौवन में साक्षात् दूसरी रति ही थी। वह शील की मूर्ति थी, पतिव्रता थी और समीचीन विचारों वाली थी। राजा उसके साथ अपने पुण्योदय के सुख का अनुभव करता था।। 7-8।।

समय पाकर उनके दो पुत्र हुए, जिस प्रकार शिव और पार्वती के गणेश और स्कन्दकुमार थे। उनमें से नंगकुमार ज्येष्ठ था और अनंगकुमार कनिष्ठ। वे दोनों पुण्यात्मा श्री चन्द्रप्रभ के शासन काल में हुए थे।।9-10।।

उनके जन्मोत्सव पर नाना प्रकार के मंगलाचार गाए गए। राजा और प्रजा सभी ने खुशियाँ मनाई। दिशाएँ मंगलवाद्यों की ध्वनि से भर गई, नगर की सड़कें प्रसन्न जनता से भर गई और नर्तकियाँ नृत्य कर रही थीं।।11-12।।

राजा अरिंजय ने उदार मन से बहुत सा धन, गाँव, मत्त हाथी, वेग में हवा से होड़ लगाने वाले घोड़े, बहुमूल्य वस्त्र, दुधारी गायें आदि दान

में दे दिए। मात्र छत्र और चामरयुगल को छोड़कर आगत अतिथियों को सब कुछ भेंट दे दिया। भला सुपुत्र की प्राप्ति हो जाने पर क्या नहीं दे दिया जाता। उस दान को पाकर याचक लोग स्वयं भी उत्तम दातार बन गए।। 13-16।।

शैशव अवस्था में दोनों कुमार बालचेष्टाओं द्वारा पुण्य-भाजन दम्पत्ति को नित्य ही प्रसन्न करते रहते थे। कुमार अवस्था में आकर यौवन के अंश को प्राप्त कर वे कामदेव को भी लजाने लगे। वे रूप और लावण्य के समुद्र थे, मुख की सुन्दरता से उन्होंने चन्द्रमा को जीत लिया था, उनके ललाट दर्पण जैसे स्वच्छ थे और भौहें कामदेव के धनुष जैसी थी। उनके नेत्र अर्धविकसित कमल से, नाक तोते जैसी सुन्दर, ओंठ बिम्बाफल की भाँति लाल, दाँतों की माला अपने आप पके अनार के दानों जैसी थी। उनकी जिव्हा सरस्वती का निवास स्थान थी। उसी प्रकार गंडस्थल भी चमकते थे और कण्ठ शंख जैसे थे।। 17-21।।

उनके कंधे बैल की भाँति पुष्ट और दोनों भुजाएँ बालहस्ति की सूँड सी लम्बी थीं। उनकी कलाई, हाथ, अंगुलियाँ और नख सभी सुन्दर थे। उनकी छाती कपाट जैसी चौड़ी थी, उदर पर त्रिवली शोभित थी, कमर सिंह जैसी थी, जंघा पुष्ट केले के स्तंभ जैसे थे और दोनों घुटने भी सुन्दर थे। सुन्दर जंघा, सुन्दर चरणकमल आदि के द्वारा वे सर्व लक्षण सम्पन्न थे और पराक्रम में सिंह और व्याघ्र जैसे थे। पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से वे महाप्रतापी थे और महान बुद्धिमान थे। राजा की शोभा उनसे और भी बढ़ गई।। 22-26।।

गुरु के पास अध्ययन करके उन दोनों वीरों ने थोड़े समय में ही अश्वविद्या, शस्त्रकला, शास्त्रीय ज्ञान आदि नाना प्रकार की कलाओं और सभी प्रकार की विद्याओं पर अधिकार कर लिया। इस संसार में पुण्यात्माओं के लिये भला दुष्कर है ही क्या।। 27-28।।

नंग और अनंग दोनों कुमारों की विचित्र चेष्टाएँ देखकर बड़े-बड़े भट भी दाँतों तले अंगुली दबाते थे।। 29।।

अब प्रस्तुत कथा से ही संबधित एक अन्य कथा कही जाती है। भव्य लोग उसे सुनें :-

मालव देश में सदा सुकाल रहता था। वह सब प्रकार से समृद्ध है, दर्शनीय है। वहाँ उत्तम एवं समृद्धिशाली नगर अरिष्ठपुर है। इस नगर में चारों ओर विविध प्रकार के वन हैं और उनमें अनेक प्रकार के सुवासित वृक्ष शोभायमान हैं। नई-नई लताएँ, नाना प्रकार के पुष्प नाना प्रकार के फल और नाना प्रकार के कुंज, नाना प्रकार के मृगों का विहार, नाना प्रकार के सारस और नाना प्रकार के पक्षियों की कल कल ध्वनि से वे वन नित्य ही भले लगते हैं। लताओं के जाल से छत्र के आकार बन जाते हैं और इस प्रकार वे वन राजा से लगने लगते हैं और सभी प्रकार की वस्तुओं के दान करने से नन्दन वन की उपमा को भी प्राप्त कर लेते हैं।। 30-36।।

वहाँ देवांगनाओं सी सुन्दर स्त्रियाँ प्रसन्न होकर यहाँ-वहाँ भ्रमण करती हैं। इस प्रकार के विचित्र उपवनों से घिरा हुआ अरिष्ठपुर नाम का नगर है। वह बड़े-बड़े महलों से संकीर्ण है, उसमें लम्बे और चौड़े राजमार्ग हैं, वह धन धान्य से भरपूर है और उसमें गहरे कुएँ हैं। निर्मल जल से भरी बड़ी-बड़ी बावड़ियों से सहज ही जल प्राप्त हो जाता है और वहाँ अनेक प्रकार के उत्सव होते रहते हैं।। 37-40।।

अनेक प्रकार के घर और अनेक बगीचों में विचित्र-विचित्र वृक्ष शोभा प्राप्त कर रहे हैं। उनके फूलों को चुनने के लिये मन ललचाने लगता है। वृक्षों पर पक्षियों की अनेक प्रकार की ध्वनियाँ गूँजती हैं, इसी प्रकार सारस, कोयल, मोर और सुग्गे भी मधुर ध्वनि सुनाते रहते हैं। हर घर में मैना का काकली स्वर गूँजता है और वहाँ की अद्भुत छवि से नेत्रों की चंचलता बढ़ जाती है।। 41-43।।

उस नगर के निवासी बड़े ही भाग्यशाली हैं, कुबेर के समान धनिक हैं, पंडित हैं, चतुर हैं, सौम्य हैं, याचकों का सत्कार करते हैं, कृतज्ञ हैं, सुन्दर हैं और शीलवान हैं। धर्मज्ञ हैं, धर्माचारी हैं और जैन

धर्म का आदर करते हैं। अपना कर्तव्य जानते हैं और पुत्र पौत्र से सुखी हैं।।44-46।।

उसी प्रकार उस नगर की स्त्रियाँ भी सुन्दरी हैं, रूप की राशि हैं। उनके मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर हैं, उनकी आँखें मृग की भाँति चंचल हैं और अपनी कान्ति से वे रति के मान को भी छीन लेती हैं। उनके शरीर का रंग सोने जैसा है, वे बिजली जैसी चंचल हैं और नख से लेकर केश तक आभूषणों से सजी रहती हैं। वे सभी गुणवती हैं, शीलवती हैं, सदाचारिणी हैं और सुन्दरता से अपने पतियों का मन हर लेती हैं।। 47-50।।

इस सर्वप्रकारेण उत्तम पुर में धनञ्जय नाम का राजा नीतिपूर्वक राज्य करता था। वह महामांडलिक था, युवकों का नेता था, महान ओजस्वी था। उसने सौंदर्य में कामदेव को जीत लिया था और उसकी शक्ति का कोई पार न था। विवेकशील, शास्त्रज्ञ, शास्त्रीजनों से घिरा हुआ, रूपवान, गुणवान, शीलवान और बुद्धिमान था। सभी राजा उसकी आज्ञा मानते थे। इस प्रकार वह महा भाग्यशाली और सुख का समुद्र था।।51-54।।

अरिंजय आदि हजारों राजा सदा उसकी आज्ञा पालते थे और उनसे वह अजेय हो गया था। उसके सामन्त संग्राम में पर्वत जैसे अटल थे। वे उद्धत थे, उनका आकार उद्धत था और वे शस्त्र और शास्त्र दोनों विद्याओं में कुशल थे। वे वीर उत्साह के सागर जैसे थे, युद्ध में विजय की उनकी अभिलाषा रहती थी और राजा की आज्ञा होने पर कठिन से कठिन कार्य भी कर डालते थे।। 55-57।।

उनकी सवारी के हाथी अञ्जन पर्वत जैसे थे और खूँटे से बंधे रहने पर भी मदान्ध और पुष्टमूर्ति दिखते थे। उनकी अद्भुत चीत्कार सुनकर शत्रुओं के मत्त हाथी डरकर युद्धभूमि से भाग जाते थे।। 58-59।।

ऊँचे-ऊँचे शिखरयुक्त उस नगर का अद्भुत परकोट कुशल कारीगरों द्वारा निर्माण किया गया था और वह इतना ऊँचा था जैसे आकाश को छू

रहा हो। शिखरों पर झंडियाँ बँधी हुई थीं। जब वे हवा से फड़फड़ाती थीं तो ऐसा मालूम होता था कि वह परकोट अपने ऊँचे हाथों से देवों को बुला रहा है।। 60-64।।

वहाँ अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित ऊँचे-ऊँचे शिखर थे जो दर्शको के चित्त को सहज ही आकृष्ट कर लेते थे। उनके ऊपर प्रत्येक स्थान पर दीर्घ विस्तार वाली शतघ्नी बादल की गड़गड़ाहट को भी जीतने वाली ध्वनि करती थी, संक्षेप में, उस परकोट की शोभा अवर्णनीय थी। राजा उस पुर में अन्य राजाओं के साथ देवों सहित इन्द्र की भाँति शोभायमान था।। 65-67।।

वह याचकों के लिये कल्पवृक्ष जैसा था, शत्रुओं के लिये आग था और प्रजा के भय रूपी वन के लिए दावाग्नि के समान था। जैनधर्म के प्रति उसे रूचि थी, वह जैनधर्म पालता था। जैन सिद्धान्त और तत्त्व का उसे ज्ञान था। वह जिनेन्द्रभक्त था और जितेन्द्रिय था। धनञ्जय महाराज धनञ्जय जैसा ही प्रतीत होता था और अपने उग्रतेज से उसने पापरूपी ईंधन जला दिया था। 68-70।।

उस राजा की पटरानी का नाम श्रीमती था और वह दूसरी लक्ष्मी जैसी रूपवती और गुणवती थी। उसे सद्‌गुण प्यारे लगते थे। उसका स्वभाव बहुत अच्छा था, उसकी आँखे विशाल थीं और मुखकमल पर मुस्कान भरी ही रहती थी। वह सुलक्षणा थी, सती थी, चारुभाषिणी थी और उसके अंग भी चारु थे। कांति में वह बिजली की लता जैसी थी और सौंदर्य में रति के समान, सौभाग्य में इन्द्राणी की तरह और शोभा में लक्ष्मी की तरह वह महल में शोभायमान थी एवं राजा की अत्यन्त प्यारी थी। उसके साथ धर्मात्मा राजा विशाल राजभवन में पुण्योदय के सुख का अनुभव करता था। 71-75।।

राजमहल में शिल्प विद्या में कुशल कारीगरों ने दृष्टि को वश में करने वाली रंगीन चित्रकारी की थी। छोटे-छोटे वृक्षों से शोभित बगियों में भौरों की गुंजन से वे जिनेन्द्र भगवान का जप करने से प्रतीत होते थे।। 76-77।।

वहाँ स्वच्छ जल से भरे छोटे-छोटे तालाब थे, उनके तट सोने के बने थे और ऐसे मालूम होते थे जैसे निर्मल गुणों से भरी साधुओं की आंतरिक वृत्तियाँ हों। उन तालाबों में फूले कमलों की पंक्तियाँ शोभित थीं जैसे वे चेतनशील अवस्था प्राप्त करने के लिये तपस्या कर रही हों।।78-79।।

वहाँ पक्षियों की नाना प्रकार की ध्वनि ऐसी सुनाई पड़ती थी जैसे शिष्य लोग पाठ याद कर रहे हों। सरोवर के जल को छूती हुई और कमलों को किंचित् हिलाती हुई वायु वहाँ राजा के पुण्य के प्रभाव से निरन्तर ही बहा करती थी।। 80-81।।

रात्रि में ज्योतित सोने के दीप अपने प्रकाश द्वारा मणि के दीपों जैसे लगते थे। इस प्रकार के विचित्र क्रीड़ागृह में रानी श्रीमती अपनी सहेलियों के साथ क्रीड़ा करती थी। महामांडलिक राजा भी उसके साथ इष्ट भोगों का सुख का अनुभव करता था। वह प्रजा को अपने सगे पुत्रों जैसा समझता था और जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों का भौंरा बनकर पुण्योदय से सानन्द राज करता था।। 82-85।।

श्री जिनेन्द्रभूषण भट्टारक पुण्याकृति हैं, पुण्य कार्य करने में तत्पर हैं, पुण्य स्थान में रहते हैं, उनकी भक्ति पुण्य है। वे बड़े पुण्यात्मा हैं और पुण्यभाजन एवं सदा पुण्योदय से ख्याति प्राप्त करते हैं।। 86।।

इस प्रकार आचारांग में श्री कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (स्वर्णाचल महात्म्य महाकाव्य) में धनंजय राजा और नंग एवं अनंग कुमारों का वर्णन करने वाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।।2।।

दूसरा अध्याय समाप्त

तीसरा अध्याय

इस (जम्बू) द्वीप के भरत क्षेत्र में विद्वान पुरुषों से अलंकृत तिलिंग नाम का महान् देश प्रसिद्ध है।।1।।

उसका राजा अमृतविजय था। वह महाबली, श्रीमान और युद्ध में उत्साह के समुद्र जैसा था।।2।।

उसकी अतिरूपा नाम की सर्वांगसुन्दरी रानी थी और वह रूप रति आदि गुणों से उसके चित्त को मोह लेती थी।।3।।

गर्व के समुद्र उस राजा ने उस रानी के साथ मनवांछित सुखों को भोगते हुए तिलिंग देश पर (बहुत-काल तक) राज्य किया।।4।।

एक दिन किसी कारण से वह बाबा अरिष्ट नगर का बैरी बनकर वहाँ के शासक धनंजय के साथ युद्ध करने के लिये निकल पड़ा। (होनहार होकर ही रहती है, इसमें कोई संशय नहीं)।।5-6।।

युद्ध के लिये प्रयाण के समय निरन्तर अनेक वाद्य बजाये गए।।7।।

बड़े-बड़े भट हजारों की संख्या में हाथी, घोड़े, रथ आदि पर सवार होकर चल पड़े।।8।।

पैदल चलने वाली सेना की क्या बात सभी युद्ध की कला में निपुण थे और वे मन में युद्ध की कांक्षा करते तीक्ष्ण शस्त्रों से सज्जित होकर चल दिए।।9।।

सारी सेना के चल देने पर मानी नृपति ने भी स्वयं अमृतविजय नामक महागज पर बैठकर विशाल रक्षक सेना से घिरे हुए अरिष्ट नगर की ओर प्रस्थान किया।। 10-11।।

पृथ्वी को हिलाती हुई और भंयकर हलचल से दिशाओं को बहरा करती हुई सेना चल रही थी।। 12।।

उग्र सेना के साथ जाते हुए राजा ने विपरीत निमित्त देखकर भी मुख नहीं मोड़ा।। 13।।

मार्ग में तलवारें म्यान से अपने आप गिर पड़ती थी, योद्धा वाहन पर से गिर पड़ते थे और वीरों के मस्तक पर गीध आ बैठते थे।। 14।।

कई दिनों की यात्रा के बाद वह अरिष्टनगर के निकट पहुँच गया और सेना सहित उसने एक बड़े मैदान में पड़ाव डाल दिया।। 15।।

उसका आगमन सुनकर राजा धनंजय ने राजनैतिक ढंग से विचार कर अरिंजय आदिक राजाओं को आदर सहित पत्र लिखकर दूत के द्वारा उन्हें निमंत्रण दिया।। 16-17।।

उसकी आज्ञा से धर्म-कर्म को जानने वाले सभी राजा शीघ्र ही आसन से उठकर अपनी सेना सहित युद्ध के लिये सज कर धनंजय के नगर को प्रस्थान करने के लिये तैयार हो गए।। 18-19।।

अरिंजय राजा प्रस्थान करने को ही थे कि नंग और अनंग कुमारों ने उनसे प्रश्न किया 'महाराज आज आप शस्त्रों से सुसज्जित सेना के साथ कहाँ जा रहे हैं?'।। 20-21।।

दोनों कुमारों के प्रश्न के उत्तर में राजा ने कहा कि हे कुमारों सुनो, तिलिंग देश के राजा अमृतविजय ने बड़ी भारी सेना के साथ धनंजय महाराज पर चढ़ाई कर दी है और अरिष्टनगर तक पहुँच गया है। धनंजय महाराज ने इसीलिए हमें निमन्त्रित किया है और महाराज की सहायता के लिये तिलिंग देश के राजा से युद्ध करने के लिये हम ससैन्य वहाँ जा रहे थे।। 22-25।।

पिता के ये वचन सुनकर दोनों कुमार बोले के हमारे रहते उस राजा से युद्ध करने के लिये महाराज का जाना उचित नहीं। पिताजी, आप हम दोनों को आज्ञा दें, हम वहाँ जाएँगे।। 26-27।।

कुमारों की ये बातें सुनकर राजा मन ही मन प्रसन्न हुआ। फिर भी उनके भावों की परीक्षा लेने के उद्देश्य से बोला ''बेटा तुम लोग अभी बालक हो, तुमने कभी युद्ध देखा भी नहीं। वहाँ भूख-प्यास-शीत-ताप

सहन करने पड़ते हैं शत्रुओं के दुवर्चन सुनने पड़ते हैं। शत्रुओं के तीक्ष्ण आयुध शरीर को अत्यधिक कष्ट देते हैं। इस प्रकार युद्ध को तुम अनेक कष्टों का घर ही समझो। और फिर तुम अभी कुमार हो, तुम धनंजय के शत्रु को कैसे जीत सकोगे। अत: मेरी आज्ञा है कि तुम महल में ही रहो।। 28-32।।

पिता की आज्ञा सुनकर वे बोले कि आपने कहा तो ठीक है फिर भी इस बात पर विचार कीजिए कि हाथी के बच्चे का शिकार करना, सिंह के बच्चे को कौन सिखाता है। वह तो उसका स्वभाव ही है। और पूर्वपुण्य जिनका सहायक होता है, वे सभी प्रकार की विपत्तियों के आ जाने पर भी सब कुछ सह लेते हैं और अपने पुण्य बल से उन सभी विपत्तियों को पार कर विजयी होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।। 33-36।।

दोनों पुत्रों के ये प्रामाणिक वाक्य सुनकर राजा का मन प्रसन्न हो उठा। उसने दोनों की खूब प्रशंसा की और सेना की संख्या और भी बढ़ाकर बड़े-बड़े योद्धाओं के साथ पुत्रों को युद्ध के लिये विदा किया। पिता की आज्ञा पाकर नंग और अनंग दोनों कुमारों ने शस्त्र धारण कर महायोद्धा का वेष बना लिया और उत्साहपूर्वक उत्तम घोड़ों पर सवार होकर सिद्ध भगवान को नमस्कार करके, भिक्षुओं को दान-दक्षिणा से संतुष्ट कर, पिता के पैर छूकर और उनकी आज्ञा लेकर हर्षित होकर जिनेन्द्र भगवान की जय बोलते हुए भटों और सेना सहित वेग से अरिष्टपुर की ओर चल पड़े।। 37-42।।

रास्ता पार करके अरिष्टनगर पहुँच कर वे दोनों वीर राजा धनंजय की सभा में पहुँचे और महामांडलिक राजा को भक्तिभाव से प्रणाम किया। राजा ने उन महावीरों को उत्साह भरा, सशस्त्र और शस्त्रविद्या में निपुण देखा तो प्रेमपूर्वक उनका सादर स्वागत किया और अपने पास बिठा लिया।। 43-46।।

इसी बीच अन्य सभी निमन्त्रित राजा भी शीघ्रतापूर्वक तैयार होकर धनंजय महाराज की सेवा में उपस्थित हो गए। राजा ने उनसे

कुशल समाचार पूछ कर उन्हें रूचि के अनुकूल निवास स्थान दिया। उनके ठहरने की व्यवस्था हो जाने पर उसने उनके लिये हर प्रकार के भोजन भिजवाए। नंगानंग कुमारों को उसने अपने आप ही ठहराया और राजाओं के योग्य हर प्रकार की सामग्री से उनका स्वागत किया। उनका उत्साह देखकर राजा परम संतुष्ट हुआ और युद्ध के बिना ही वह अपने को विजयी समझने लगा।। 47-51।।

अतिथियों का यथोचित् सत्कार करके प्रात: युद्ध होने पर भी वह पुण्यवान राजा सुखपूर्वक सोया। रात्रि में आधा पहर शेष रहने पर मांगलिक बाजों की ध्वनि और वंदियों के उत्तम पाठ सुनकर उसकी नींद खुली और सिद्धों का स्मरण कर उसने विधिपूर्वक शय्या से भूमि पर पैर रखे। शौच, स्नान आदि से निपट कर उसने विधिवत् और श्रद्धापूर्वक श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा की और संसार भर को विजय देने वाले भगवान् को बार-बार प्रणाम करके युद्धोचित वस्त्राभूषण पहने।। 52-57।।

सवेरा होते ही उत्साहपूर्वक वह सजे हुए मत्त हाथी पर आरूढ़ हुआ और इसी प्रकार शस्त्रधारी हजारों सामंत भी पवन जैसे तेज घोड़ों पर सवार हो गए। नंग और अनंग कुमार भी प्रात: कालीन क्रियाओं से निपटकर हाथी पर आरूढ़ होकर राजा के दोनों बाजू में स्थित हो गये थे। अन्य वीर भी जिनमें कोई हाथी पर, कोई घोड़ो पर और कोई रथों पर सवार थे तथा लाखों पैदल सिपाहियों से युक्त राजा धनंजय राजमार्ग से निकला और अपनी प्रजा की दयनीय दशा देखता हुआ और उनका आशीर्वाद सुनता हुआ नगर से बाहर निकला। शुभ लक्षणों को देख प्रसन्न होकर वह थोड़ी देर के लिये नगर के बाहर आकर ठहरा। इसी बीच सभी राजा अपनी-अपनी सेना सहित शीघ्रता से वहाँ आ पहुँचे और प्रणाम करके उसके पास में खड़े हो गए।। 58-65।।

इसी समय युद्ध के बाजे और भेरी आदि चारों ओर से बजाई जाने लगी। उनके निकट स्वर से चारों दिशाएँ गूँज उठीं और सुनने में कठोर लगने वाले स्वर से सारा आकाश भर गया। उसे सुनकर शत्रुओं का हृदय

काँपने लगा, उनके कान बहरे हो गए और शस्त्रों के साथ ही उनका उत्साह भी छूटने लगा।। 66-68।।

धनंजय राजा की महती सेना अपनी विशालता से पृथ्वी को भरती हुई चल रही थी। उसमें पर्वत के समान ऊँचे हजारों मदोन्मत्त हाथी थे और वायु जैसे वेगशील घोड़े थे। इसी प्रकार हाथियों के रथ, घोड़ों के रथ और बैलों के रथों के अतिरिक्त पैदल सेना भी शत्रु सेना की ओर दौड़ रही थी। निष्ठुर एवं कठोर पृथ्वी उस युद्ध के भय से काँप रही थी और घोड़ो की टापों से खुदकर वह हल चलाई हुई पृथ्वी की भाँति पैदल सैनिकों की सुखपूर्वक यात्रा के लिये कोमल बन गई थी।। 69-73।।

दौड़ते हुए घोड़ों के खुरों से जो धूल उड़ी उसने आकाश में जाकर सूर्य को छिपा दिया और इसलिये संध्या का जैसा समय मालूम होने लगा। सामन्त लोग उत्तेजित होकर 'शत्रुओं को मार डाले और पीठ दिखाने वालों को छोड़ दो' इस प्रकार चिल्लाते हुए चंचल घोड़ों पर आरूढ़ हुए शत्रु की सेना की ओर बढ़ रहे थे। उत्साह रूपी जल से भरी हुई राजा की सेना ऐसी मालूम होती थी, जैसे समुद्र ने अपनी मर्यादा तोड़ दी हो।

इस प्रकार रास्ता तय करके धनंजय राजा की उद्धत सेना शत्रु सेना के करीब पहुँच गई।। 74-78।।

श्री जिनेन्द्रभूषण क्षमा निधि हैं, तपोनिधि हैं, दयानिधि हैं और आचरणशील एवं अदूषण हैं।। 79।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में धनंजय-युद्ध-प्रयाण वर्णन नाम का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ।। 3।।

तीसरा अध्याय समाप्त

चौथा अध्याय

तिलिंग प्रान्त के अधिपति अमृतविजय ने धनंजय की सेना को अपने सामने देखा। तत्क्षण ही वह हुंकार कर आसन से उठ खड़ा हुआ और उसने मंत्रियों और सामन्तों को युद्ध की आज्ञा दे दी।। 1-2।।

वह स्वयं भी युद्ध के लिये सजाये गये हाथी पर आरूढ़ हो गया। उसने हाथ में शस्त्र संभाल लिया और क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गये। उसके हाथी पर आरूढ़ होते ही हजारों सामंत हाथों से शस्त्र चमकाते हुए हाथी, घोड़ों और रथों पर सवार हो गए। वाद्य बजाने वालों ने युद्ध के बाजे, भेरी आदि सहसा एक साथ ही बजा दिये। दोनों ओर की सेनाओं की रणभेरियों के अति दुस्सह स्वर से आकाश में चन्द्रमा और तारे भी बहरे हो गए।। 3-8।।

युद्ध के लिये प्रस्थान करते ही तिलिंगराज की ध्वजा अचानक गिर पड़ी जो कि अशुभ निमित्त की सूचना थी। इतने पर भी वह गर्वांध राजा फिरा नहीं। होनहार के अनुसार ही लोगों की मति हो जाती है। सैंकड़ों हजारों वीर, राजा के चारों ओर थे और 'ठहरो-ठहरो' कहकर लोगों को शान्त करते थे।। 9-11।।

घोड़ों के खुरों से उड़ी हुई धूल के विस्तार से सूर्य छिप गया और क्षयकाल जैसा प्रतीत होने लगा, अकाल में ही रात्रि आ गई और अपना अथवा शत्रुपक्ष का सैनिक नाम लेकर पुकारे बिना पहचाना नहीं जाता था। जब घोड़ों के मुख से विशेष दौड़ने के कारण फेन गिरने लगा, तब धूल शान्त हुई और धरती पर कीचड़ मच गया, सूर्य दिखने लगा, अन्धकार नष्ट हो गया और सैनिक अपने पास वाले अन्य सैनिकों को दिखने लगे।। 12-15।।

इसके बाद फिर युद्ध हुआ और शस्त्रों का जाल सा बिछ गया। किन्हीं योद्धाओं ने कर्णान्त तक धनुष खींचकर बाणों का जाल बरसा

दिया जैसे बादल पानी बरसाते हैं। दूसरे धनुर्विद्याविज्ञ वीरों ने बीच रास्ते ही अपने बाणों को सरलता से काट दिया। बाणों के कट जाने से कभी-कभी गुस्से में आकर योद्धा उन्हें युद्धभूमि में ही फेंक देते थे।। 16-19।।

बाण कब तरकस में से निकला, कब धनुष पर चढ़ाया और कब छोड़ा इसका ज्ञान किसी को न हो पाता था। इसी बीच किन्हीं वीरों ने तीक्ष्ण विष वाले नागबाण भी छोड़ दिए।। 20-21।।

हाथीसवार हाथी सवारों से, घुड़सवार घुड़सवारों से, रथवाले रथवालों से और पैदल सैनिकों से सैनिक गर्व और उत्साह सहित युद्ध कर रहे थे और उनकी आँखें लाल हो रही थीं। बहुत से बाण तो वीरों द्वारा मार्ग में ही काट दिये जाते थे और बहुत से वीरों के अंगों में प्रविष्ट होकर उनके हृदय को विदीर्ण कर, मस्तक छेदकर, भुजाएँ काटकर उन्हें पृथ्वी पर गिरा देते थे।। 22-25।।

युद्ध करते-करते सैनिक लोग अब परस्पर निकट आ चुके थे, तीक्ष्ण बाणों के लगने से अंग-भंग हाथी और घोड़े निष्प्राण होकर गिरने लगते थे और रथियों के रथ टूट गए थे। धनुष छिन्न हो जाने पर भी सामन्त लोग युद्ध में पैदल ही लड़ रहे थे और उनकी आँखों में क्रोध भर रहा था।। 26-28।।

कोई नंगी तलवारें चमका रहे थे, कोई त्रिशूल लिये थे, कोई शक्ति चला रहे थे, कोई गदा, कोई चक्र, इस प्रकार नाना प्रकार के शस्त्रों से योद्धा भयंकर युद्ध लड़ रहे थे। शस्त्रों से आहत होकर कितने योद्धा अंग विहीन होकर लड़ते-लड़ते भूमि पर गिर गए। धनंजय के प्रताप से उसके योद्धाओं की शक्ति और भी बढ़ रही थी और उन्होंने तिलिंगराज के सैनिकों को हिला दिया। जब वे भागने लगे तो तिलिंगराज अमृतविजय क्रुद्ध होकर स्वयं प्रधान सामंतों सहित युद्ध में उतर पड़ा और तीक्ष्ण बाणों से धनंजय की सेना का संहार करने लगा। किन्तु धनंजय के सैनिक बड़े दृढ़ थे, उसके बाणों से सर्वांग छिन्न हो जाने पर प्राणों को तो छोड़ देते थे पर युद्धभूमि नहीं छोड़ते थे।। 29-36।।

धनंजय की सेना को इस प्रकार नष्ट होते देख बहुत से राजा सहायता को बढ़े, पर अमृतविजय के महाभटों ने अपने बाणों से उनके प्रयत्न व्यर्थ कर दिए। इतना होने पर भी वे वीर डटे ही रहे। तिलिंगराज कुशल योद्धा एवं महाबली था। उसने उनमें से कितने को घायल कर दिया और कितने को स्वर्ग पठा दिया और उनके चलाए बाणों से इस प्रकार उन राजाओं को विंधा देखकर उसके योद्धाओं का उत्साह दूना बढ़ता था और जब तक वे उनके बाणों को काटें तब तक तिलिंगराज अपने बाणों से उन्हें छेद डालता था। 37-43।।

यह देखकर सभी राजा एक साथ तिलिंगराज के साथ युद्ध करने को दौड़ पड़े। उनके सहसा आने पर तिलिंगराज ने आगे बढ़कर अपने प्रधान भटों समेत बाणवर्षा करके उन्हें रोक दिया। वह बाणों का जाल बिछा देता था और शत्रुओं के बाणों को खेल में ही काट देता था। इस प्रकार की कुशलता के कारण वह उन लोगों के लिये अजेय हो गया।। 44-46।।

अपने सेवक राजाओं की यह दुर्दशा और रणोन्मत्त राजा को देखकर महाराज धनंजय ने नंगसेन और अनंगसेन का स्मरण किया और उनके संकेत को समझने वाले वे दोनों वीर हवा की तेजी से तिलिंगराज अमृतविजय के सम्मुख जा पहुँचे। सेना और अन्य भट भी उनके पीछे-पीछे पहुँचे।।47-49।।

अनंगसेन तिलिंगराज के प्रधान भटों को रोककर युद्धभूमि में पर्वत सा डट गया और नंगसेन ने तिलिंगराज को उसी उत्साह और सिंहनाद के साथ अपने बाणों से रोक दिया। सर्वप्रथम उन दोनों ने पहली पंक्ति में स्थित वीरों के धनुषों को बाणवर्षा द्वारा काट डाला। इसके बाद नंगसेन ने उनके हृदय को भेदकर धड़ाधड़ उन्हें भूमि पर गिरा दिया।।50-53।।

अपने सामन्तों को इतनी शीघ्रता से गिरते देख तिलिंगराज आगे बढ़ा और उसने नंगसेन पर बाणवर्षा कर दी। किन्तु सिद्ध भगवान को वंदना के प्रभाव से सैंकड़ों बाणों का भी उस पर कोई प्रभाव न हुआ और पीड़ा की उपेक्षा करता हुआ वह क्रोधपूर्वक उसके सामने जा पहुँचा।

घोड़े और हाथी पर सवार दोनों वीरों में अद्भुत बाण युद्ध हुआ।। 54-56।।

दूसरी ओर अनंगसेन तिलिंगराज के प्रधान सामन्तों से घिरा हुआ उनके बीच ऐसा मालूम होता था जैसे हाथियों के बीच सिंह अपने तीक्ष्ण बाणों से उसने कितनों के मस्तक, कितनों के बाहु, कितनों के पैर, कितनों के हाथ काट डाले और उसके बाणों से भिन्न हृदय होकर बड़े-बड़े भट भूमि पर लोटने लगे।। 57-60।।

अल्प समय में ही प्रधान सामंतों को मारकर अनंगसेन ने धनंजय राजा के मन में विस्मय पैदा कर दिया और फिर सिंह गर्जना करता हुआ बड़े भाई की सहायता के लिये बड़ा। सामने की पंक्ति तो नंगसेन ने गिरा दी। और आजू-बाजू और पीछे के सैनिकों को अनंगसेन ने मार गिराया। तिलिंगराज द्वारा चलाए गए कई बाणों को नंगकुमार ने छेद दिया और कई एक जो शरीर में लग गए उनकी उपेक्षा कर दी और क्रोध में आकर अपने बाणों से उसका मुकुट, धतुष तथा अन्यान्य सभी अस्त्र गिरा दिए। और जब तक वह दूसरे धनुष-बाण ग्रहण करे तब तक अनंगसेन ने अपने बाणों से उसे विह्वल कर दिया। मुख फिराकर ज्यों ही तिलिंगराज ने उसे देखने का प्रयत्न किया कि नंगसेन शीघ्रता से घोड़े को उड़ाकर उसके हाथी पर जा पहुँचा और उस महावीर शिरोमणि ने तिलिंगराज को बाँध लिया। बची-कुची सेना यहाँ-वहाँ भाग चली और युद्ध स्थान से इनकी विजय के बाजे बजने लगे।। 61-70।।

इसके अनंतर विजयी कुमारों ने अमृतविजय को धनंजय राजा के सम्मुख उपस्थित किया। उसे देखकर उदार धनंजयराज ने करुणार्द्र होकर उसका देश, उसकी सम्पत्ति और उसका ऐश्वर्य कुछ भी नहीं छीना, सिर्फ अपनी आज्ञा की प्रमाणिकता उससे स्वीकृत करा ली।। 71-73।।

कुछ शासक जिनका हृदय सच्चे ज्ञान से परे होता है - भूमि, सम्पत्ति और ऐश्वर्य के लोभी होते हैं। किन्तु उदार शासक ऐसे नहीं होते। वे तो मानरक्षा के लिये शत्रु से आज्ञाप्रामाण्य की ही अपेक्षा करते हैं।।74-75।।

इसके बाद राजा धनंजय ने नंगसेन और अनंगसेन की अत्यधिक प्रशंसा की और तिलिंगराज को वस्त्राभूषण आदि से सम्मानित कर मीठे वार्तालाप से उसके मन का समाधान किया। इसके बाद जयजयकारों के बीच अपने पुर मे प्रवेश किया। उसने तिलिंगराज को उच्चस्थान दिया तथा उसने सेवकों को भी अभय देकर कृतकृत्य होकर आनंदित हुआ।।76-78।।

श्री जिनेन्द्रभूषण भट्टारक बटेश्वर क्षेत्र में रहते हैं और अपने गुणों से और धर्मरुचि से वे संसार में सम्मानित हैं।। 79।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंगकुमार अनंगकुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में धनंजय, नंगसेन और अनंगसेन के पराक्रम का वर्णन करने वाला चौथा अध्याय समाप्त हुआ।। 4।।

चौथा अध्याय समाप्त

पाँचवाँ अध्याय

इस पराजय के कारण अब राजा अमृतविजय को अपने राज्य से अत्यधिक वैराग्य हो गया। भव्य पुरुषों के वैराग्य में कोई भी घटना कारण बन सकती है और अभव्यों की आसक्ति में वही बंधन का कारण बन सकती है। राजा भव्य था और इस पराजय से उसे बोध हो गया और वह संसार को धिक्कारने लगा।। 1-3।।

उसे अपनी देह से भी विराग हो गया और वह बार-बार अध्रुव आदि बारह अनुप्रेक्षाओं को चिन्तन करने लगा।। 4।।

उसी समय केवलज्ञानधारी, अनन्तचतुष्टय के धारक, घातिकर्मों के नाशक, अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का समवशरण आकर वहाँ ठहरा और जिस प्रकार प्यास से अत्यन्त विह्वल पुरुष को कोई अमृत पिलाने वाला मिल जाता है, उसी प्रकार तिलिंगराज को उनका लाभ हो गया।।5-7।।

धनंजय आदिक राजाओं ने समवशरण सभा को दूर से आते देख शुद्ध भावों से स्वागत किया।। 8।।

"अरे यह क्या बारह सूर्यों का प्रभामण्डल शीघ्रता से आकाश से पृथ्वी पर उतर आया है अथवा शरण ऋतु के चन्द्रमा का सोलह कलाओं युक्त बिम्ब दिखाई दे रहा है। कहीं हमारे भाग्य से इन्द्र का उत्सव तो हमारे सामने नहीं हो रहा है या अज्ञानरूपी वन को जलाने के लिये भीषण दावाग्नि तो नहीं प्रकट हुई है" इस प्रकार आचार्य लोग राजा से तर्क कर रहे थे कि समवशरण सभा करीब आ गई और राजाओं ने भगवान के दर्शन किये। भगवान की प्रभा समष्टि में दिख रही थी, वह आलौकिक और अतुल्य थी। उसे देखकर सभी के मन में विस्मय हुआ।। 9-14।।

समवशरण सभा में साढ़े बारह करोड़ जाति के बाजे, मृदंग, पटह, पणव, गोमुख, भेरी, दुन्दुभि, मख, डिंडिंभ, डमरू, दद्‌र्धुर, वीणा,

तालमाना इत्यादि मधुर स्वर से बाजे बज रहे थे। साथ ही साथ पंचाश्चर्य भी हो रहे थे।। 15-17।।

इन चिह्नों से धनंजय आदिक राजाओं ने अपने हृदय में भगवान चन्द्रप्रभ के विहार का अनुमान कर लिया और दर्शन करने के लिये उनका हृदय प्रेम से प्रफुल्लित हो गया। राजा धनंजय एकदम अपने आसन से उठ खड़ा हुआ और उसी प्रकार विरागी अमृतविजय भी।

भक्तिभाव-समन्वित सैंकड़ों अन्य राजा तथा मतिमान नंगसेन और अनंगसेन भी भगवान के चरणों की वन्दना के लिये उठ खड़े हुए। सभी के मुख प्रेम कमल से खिले जा रहे थे और सभी भगवान की वन्दना के लिये श्रद्धापूर्वक चन्दन, अक्षत, पुष्प और मीठे-मीठे फल आदि द्रव्य लेकर चल पड़े।। 18-24।।

भक्तिभाव से नम्र होकर सभी राजागण समवशरण स्थान पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि प्रथम तो तीन कोट हैं, उनमें से पहला कोट तो स्वर्णमय है, दूसरा रुप्यमय है और तीसरा स्फटिक का है और इन कोटों में चारों दिशाएँ प्रतिभासित हो रही हैं। राजाओं ने यह भी देखा कि वहाँ सोने के बनाए बड़े-बड़े ऊँचे मानस्तम्भ स्थित हैं, उनके पास में चारों ओर चार-चार छोटे-छोटे तालाब हैं। प्रत्येक मानस्तम्भ पर चारों दिशाओं से दर्शनीय मनोहर चार चार सिद्ध भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। हेमशाला के बाहर जहाँ खाई है वहीं उसमें मनोरम वन और वेदियाँ हैं। उन वनों में सुगन्धित पुष्पवाटिकाएँ हैं और उनके बीच सोने का बना कोट है और उसके चारों द्वारों पर मंगल द्रव्य एकत्र किए गए हैं। प्रत्येक द्वार पर दो-दो नाटकशालाएँ हैं। उनमें देवांगनाएँ सुन्दर और मनोहर कुशलता पूर्ण नृत्य कर रही हैं।। 25-35।।

उसके बाद अनेक पुष्प और फलयुक्त उपवन हैं, उनमें देखने योग्य वेदिकाएँ हैं। उनमें लगी झण्डियाँ अद्भुत रूप से शोभित हैं। ऊँची होने से वे एक दूसरे को छूती जान पड़ती हैं।। 36-37।।

इसी प्रकार दूसरा कोट है। उसमें कल्पवृक्षों के वन हैं जो याचना करने पर सर्व प्रकार की वस्तुएँ देते हैं। रत्नों के बने स्तूपों पर सिद्ध भगवान की मनोहर प्रतिमाएँ हैं। इसी प्रकार वहाँ देवों का उत्तम क्रीडा स्थान और महलों की पंक्तियाँ हैं।। 38-41।।

स्फटिक कोट में ये विशेषताएँ थीं। उसके बीच में बारह कोष्ट बनाए गए थे और उनमें देव, मनुष्य, मुनि, तिर्यंच आदि बैठे थे। दृष्टि को मनोहर आदि विचित्र रत्नमयी अत्यन्त अद्भुत श्रीमण्डप था। उस पर त्रिमेखलायुक्त सुन्दर आसन था और उस पर चार अंगुल के अन्तराल से, सुरासुरों द्वारा पूज्य चन्द्रलांछन भगवान चन्द्रप्रभु आसीन थे। आठों प्रातिहार्यों से वे सुशोभित थे। इस प्रकार समवशरण में भगवान चन्द्रप्रभु के दर्शन कर धनंजय आदि राजा कृतकृत्य हो गए।। 42-47।।

भगवान के चरणकमलों में साष्टांग नमस्कार करके उन्होंने विधिवत् पूजा की। भक्तिपूर्वक परिक्रमा करके सबने इस प्रकार स्तुति की 'हे संसार के नाथ' आपकी जय हो। आप तीनों लोकों के आधार हैं, कल्याणदायक हैं, धर्म के निवास स्थान हैं, धर्माकृति हैं, धर्म के प्रचारक हैं। आप वैराग्यसागर हैं, संसार में विरक्त होकर अपने सर्वभूमि सम्पत्ति को तृणवत् त्यागकर मुनि के व्रत ग्रहण किए हैं। निर्जन वन, श्मशान, पर्वतशिखर में रहकर आपने योग की सिद्धि की है और दुष्ट शत्रुओं को सुला दिया है।। 48-55।।

दीक्षा कल्याणक के समय आपकी पालकी ढोने से देव और इन्द्र पुण्य के भागी बन गये। संयम ग्रहण कर लोगों को विस्मयकारी बारह प्रकार का कठोर तप करके कर्मों के क्षय करने में निपुण शुक्ल ध्यान की प्राणियों को सर्वथा दुर्लभ अनन्तचतुष्टय आपने प्राप्त किए और हे दयानिधि, आपने मोक्षमहल की सीढ़ी के डण्डे स्वरूप केवलज्ञान को भी प्राप्त कर लिया है, अब यहाँ स्वेच्छा से सुर, असुर, मनुष्य सभी के कल्याण के लिये अपनी अमृत से भी मधुर दिव्य ध्वनि से उपदेश करें। आप तीन लोक के आनन्दकारी हैं, शुद्धरूप हैं, परात्पर हैं, आपको

नमस्कार हो। आप अज्ञान के अन्धकार को मिटाने के लिये साक्षात् सूर्य हैं, भव्यों के समुदाय रूपी कुमुदिनियों के लिये चन्द्रमा हैं, आपको नमस्कार हो। पुण्यरूपी सद्वृक्ष के पोषण करने के लिये आप मेघ हैं और गुणों के समुद्र हैं। आप ज्ञानरूप हैं, करुणासमुद्र हैं, शीलरूप हैं और मुनियों में सर्वोच्च हैं। आपके नेत्र प्रफुल्ल कमल जैसे हैं और मुख शरद्चन्द्र जैसा सौम्य और आह्लादक है। आप सौंदर्य के समुद्र हैं और सभी प्राणियों के शरण्य हैं, आपको नमस्कार हो। समस्त आगमों के अर्थ के ज्ञाता, वाणी के स्वामी, हे परमेष्ठिन्, आपको बार-बार नमस्कार हो।। 56-68।।

हे देव, हे दयासिन्धु, हे शरणागतवत्सल, आप सदा शरण में आए प्राणियों के शरण्य बनें। इस प्रकार धनंजय आदि भव्य राजाओं ने हाथ जोड़कर आसन पर विराजमान भगवान की स्तुति की।। 69-70।।

प्रभु के ध्यान में जिसका चित्त संसक्त है, जो महात्मा अपने शुद्ध विचारों से विश्व में ख्याति प्राप्त कर चुका है जो जगत्पूज्य है, जो जैन शास्त्रों के अनुसार कार्य करता है, वह भट्टारक जिनेन्द्रभूषण चिरंजीवीं हों।। 71।।

(इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंगकुमार अनंगकुमार चरित्र श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य में श्री चन्द्रप्रभु-समागम और धनंजय आदि द्वारा स्तुति का वर्णन करने वाला पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 5।।

पाँचवाँ अध्याय समाप्त

छठा अध्याय

सब राजाओं की स्तुति के अंत में भगवान के मुखकमल से सुधा जैसी वाणी खिरी। तीनों लोकों में वह भारती अर्धमागधी के नाम से ख्यात है और उसे सभी प्रकार के देव और तिर्यंच तथा सभी देशों के निवासी मनुष्य अपनी अपनी भाषा में समझ लेते हैं। श्रावकजाति और सद्धर्म तथा भाषा ज्ञान से, अपना देखा ही उन वाक्यों में सुनकर धनंजय अत्यन्त प्रसन्न हुआ।। 1-4।।

भगवान के मुखचन्द्र से भरे धर्मामृत का पान करके धनंजय ने त्रैलोक्येश्वर से हाथ जोड़कर प्रार्थना की। हे भगवन्, राजा अमृतविजय और मेरी शत्रुता व बैर का क्या कारण है, दया कर इसे कहिए।। 5-6।।

यह सुनकर भगवान के मुख से वाणी खिरी और वे उक्त बैर का कारण कहने लगे। हे धनंजय, ध्यान देकर सुनो। पूर्व विदेह में वत्सकावती नाम का देश है। उसमें शीतल जलवाहिनी, मनोहर तरंगों वाली सीता नदी के दक्षिणी भाग में सूर्यपुरी नाम की नगरी है। वह सब प्रकार से समृद्ध कुबेर की नगरी जैसी ही है।। 7-10।।

उस नगरी का राजा हेमसेन अत्यन्त रसिक, विषयी तथा नृत्य-प्रेमी था। उसकी रानी प्रियसेना सुशीला, सुलक्षणा, रूपयौवन-सम्पन्न एवं चन्द्रमुखी थी।। 11-12।।

उस राजा की विशाला नाम की नर्तकी थी। वह नृत्य में निपुण थी, कोयल जैसा उसका मीठा स्वर था, उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं, बिजली जैसी उसकी देह चमकती थी। वह सर्वांगेण सुन्दर थी, चारुभाषिणी थी और तरह तरह की तानों द्वारा लागों का मन मोह लेती थी। वह विपंची आदि अच्छे-अच्छे वाद्य बजाती थी और चित्रकला भी जानती थी। उसने अपने मनोहर आलाप तथा गायन-नाट्य आदि से महाराज हेमसेन को सहज ही वश में कर लिया था और राजा भी उसे अत्यधिक प्यार करने लगा था।। 13-17।।

उसी प्रान्त में प्रभाकरी नाम की पुरी थी और उसमें राजा सोमसेन राज्य करता था। विषयासक्त जनों को कभी तृप्ति नहीं मिलती, घी की धारा से अग्नि शान्त नहीं होती। एक दिन सोमसेन अपने दरबार में सिंहासन पर बैठा हुआ था। प्रधान आदिक सभी विद्वान और सभासद अपने अपने कार्य कर रहे थे। बहुत से लोग अपने रत्नों की चर्चा कर रहे थे और वह कामी राजा उसे सुन रहा था।। 18-22।।

उसी बीच किसी ने कहा कि सूर्यपुरी के राजा हेमसेन की विशाला नाम की नर्तकी अति सुन्दरी है। वह कान्ति में विद्युल्लता और वर्ण में स्वर्णावल्ली जैसी है। वह वाणी में सरस्वती और स्वर में कोयल है। चतुर तो इतनी अधिक है जैसे स्वयं महाराज की बुद्धि रूप धारण कर आ गई हो।।23-25।।

उसका मुख चन्द्र जैसा, आँखें मृगी जैसी और भौहें कामदेव के धनुष जैसी हैं। उसके दोनों स्तन स्वर्णकलश जैसे उन्नत हैं और वह सर्वांगसुन्दरी है। वह गायन और नाट्य में चतुर है, वीणा आदि वाद्य बजाने में निपुण है और हाव भाव एवं कला की निधि है। उसका मुख सदा प्रसन्न रहता है और दर्शन से चित्त को हर लेती है।। 26-29।।

इस प्रकार नर्तकी विशाला की प्रशंसा सुनकर वह राजा दरबार में आसन पर बैठा-बैठा ही मूर्छित हो गया। किसी के रूप आदि की कथा सुनना और उसमें मोहित हो जाना यह कामी पुरुषों का धर्म बन गया है। वैसे तो चमड़ा आदि धातुएँ सभी एक ही हैं, अलग-अलग नहीं किन्तु भ्रम से गोरा और काला रंग दिखने लगता है। उसी प्रकार वाणी भी एक ही वस्तु है, वही हलकी और भारी हो जाती है। विचार करने पर विद्वान सभी शरीरों की समानता को समझ लेते हैं। किन्तु कामीजनों को तो स्वभाव से ही विषमता का अनुभव होता रहता है।। 30-33।।

राजा को मूर्छित हुआ देखकर प्रधान सामन्तों ने हड़बड़ाकर उनके उपचार किए। चन्दनादि मिश्रित शीतल जल के छींटे दिए और हवा की। इससे राजा को होश आया।। 34-35।।

होश में आने पर भी राजा हृदय में उसी नर्तकी की चिन्ता करता रहा और रात में उसे नींद न आई। शय्या पर पड़ा-पड़ा यों सोचने लगा- "हेमसेन के महल में निवास करने वाली नर्तकी यद्यपि मैंने अभी तक देखी नहीं है फिर भी वह कानों द्वारा मेरी दृष्टि के गोचर हो चुकी है और मेरे हृदय में बस गई है। वह मुझे विरह की आग में जला रही है। बिना मिले ही तो उसने कामाग्नि प्रज्ज्वल्लित कर दी है, मिलने पर तो मुझे परम आनन्द देगी। उसके मिले बिना भी यह सारा राज्य भी मुझे दु:खद मालूम होता है और खाने-पीने में भी मेरा मन नहीं लगता। उसके बिना इस महल में अब आधे क्षण भी रहने की शक्ति मुझमें नहीं है, क्योंकि सारा अंग विरह की आग में जल रहा है। उस राजा की प्राणवल्लभा मुझे प्राप्त कैसे होगी, क्योंकि साम दाम भेद से तो वह मुझे देगा नहीं। अत: उसके साथ युद्ध करके प्रत्यत्नपूर्वक उसे जीतकर विशाला को यहाँ लाना होगा और कोई दूसरा उपाय ही नहीं है।" इस प्रकार निर्णय कर वह सवेरे उठा।। 36-44।।

राजा सहसा सभामण्डप में आया और सिंहासन पर बैठकर उसने द्वारपाल को आज्ञा दी कि मंत्रियों, सामन्तों तथा मेरे अन्य हितैषियों एवं सेवकों को सभा में उपस्थित होने को कहो।। 45-46।।

द्वारपाल ने महाराज सोमसेन की यह आज्ञा शीघ्रतापूर्वक सभी कर्मचारियों तक पहुँचा दी। उसे सुनकर प्रधानगण, सामन्त और सेवक आदि सभी शीघ्रतापूर्वक महाराज की सभा में आ पहुँचे। महाराज को भक्तिभाव से प्रणाम कर यथास्थान बैठकर वे लोग महाराज के मुख की ओर निहारते महाराज की आज्ञा सुनने के लिये उत्सुक थे। 47-49।।

सभी अधिकारियों और कर्मचारियों के यथास्थान बैठ जाने पर काम की तीव्रता से निर्लज्ज और राज्यासन पर बैठकर भी विशाला के ध्यान में लीन राजा यों बोला :-

"सूर्यपुरी के राजा हेमसेन के महलों में विशाला नाम की एक अत्यन्त सन्दर नर्तकी है। वह समस्त कलाओं से परिपर्ण है और अद्वितीय

स्त्रीरत्न है। उसकी प्रशंसा सुनते ही वह मेरे हृदय में बस गई और मैंने जैसे उसे देख लिया। राजा हेमसेन को भी वह विशेष प्यार है, इसलिये साम, दाम और भेद से तो वह उसे समर्पित करेगा नहीं। अतः मैं उसके साथ युद्ध करूँगा और उसे जीतकर विशाला को प्राप्त करूँगा, इसलिये आप लोग शीघ्र ही तैयार हो जायें।''

राजा की यह बात सुनकर सभी लोग मौन हो गये।। 50-55।।

वृद्ध मंत्रियों ने कहा कि प्रभु वह उचित नहीं है। इस कार्य से संसार भर में अपवाद होगा कि सोमसेन महाराज ने एक नर्तकी के लिये हेमसेन से रण रोपा था। विजय में भी संशय ही है क्योंकि वह भाग्य के आधीन है, इसलिये आपको युद्ध के लिये इतना उत्सुक नहीं होना चाहिए।।56-58।।

हे राजन्, संसार में आपके लिये दुर्लभ है क्या? संसार में हजारों परम सुन्दरी कन्याएँ हैं, उन्हें आप मूल्य से खरीदकर नाट्य शाला में गायकों के निकट रख दीजिए। वे उन्हें नृत्य और गान की शिक्षा देंगे और इस प्रकार कुछ दिनों में ही वे कन्याएँ गायिकाएँ और नर्तकियाँ बन जायेंगी। यह तरीका उचित है, वह नहीं।। 59-62।।

वृद्ध मंत्रियों के ये तथ्य और पथ्य वचन सुनकर वह कामान्ध सोमसेन बोला- 'तुम लोग तो बूढ़े हो गये हो। इसलिये तुममें से युद्ध का उत्साह जाता रहा। तुम घर में ही रहो पर मैं उक्त कार्य की सिद्धि के लिये युद्ध अवश्य करूँगा।' ऐसा कहकर शीघ्रतापूर्वक आसन से उठकर महागज पर आरूढ़ होकर युद्धभेरी बजाता हुआ सेना लेकर निकल पड़ा। पर सूर्यपुरी तक दौड़ता ही गया और उसके करीब पहुँचकर उसने पड़ाव डाल दिए।। 63-66।।

उसने हेमसेन के पास दूत पहुँचाया और यह सन्देश भेजा कि या तो तुम मुझे नर्तकी विशाला सौंप दो अथवा मेरे साथ युद्ध करो। दूत ने हेमसेन की सेवा में सन्देश उपस्थित कर दिया और इसके उत्तर में हेमसेन

भी युद्ध के लिये निकल पड़ा। दोनों राजाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ और बड़े-बड़े वीर उस ज्वाला में स्वाहा हो गए।। 67-69।।

हेमसेन की सेना के प्रहार से सोमसेन के योद्धा भूमि में गिरने लगे और अन्त में उसकी पराजय हुई। मांसाहारियों में दया कहाँ, विषयी पुरुषों में घृणा कहाँ, ठगों में सत्यता कहाँ और कामान्ध पुरुषों की विजय कहाँ। एक नर्तकी के लियें अपने इतने वीरों का नाश देखकर और बूढ़े मंत्रियों का कहना यादकर सोमसेन लज्जा से नम्र हो गया और उसी क्षण उसे संसार से वैराग्य हो गया। वह फिर नगर नहीं लौटा और साधु होकर तपस्या करने लगा।। 70-73।।

कभी-कभी मनुष्यों को बुरे कामों से भी अच्छे कामों की प्राप्ति हो जाती है।। 74।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंगकुमार अनंगकुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में भगवान चन्द्रप्रभ द्वारा कहा गया हेमसेन-सोमसेन का वर्णन कहने वाला छठाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 6।।

छठाँ अध्याय समाप्त

सातवाँ अध्याय

सोमसेन मुनि वन में तपस्या कर, पापों को जलाकर, शरीर त्याग कर, स्वर्ग गए और सौधर्म कल्प में प्रभाकर विमान में प्रभाकर नामक उत्तम देव हुए। वहाँ उन्होंने पुण्योदय से अपनी आयु भर विविध प्रकार के देवोचित सुख भोग और आयु के अन्त होने पर स्वर्ग से च्युत होकर अरिष्टपुर में महामण्डलिक और हजारों राजाओं द्वारा सेव्य तुम धनंजय हुए हो। तप का पुण्य अभी तो शेष रहने के कारण तुम अभी तक किसी शत्रु से पराजित नहीं हुए। तप का फल ऐसा ही है।। 1-6।।

अब हेमसेन का हाल सुनो। वह विशाला नर्तकी के साथ नृत्य, हाव भाव, गायन और मृदंगनादमिश्रित ताल की मधुर ध्वनियुक्त वीणा आदि वाद्यों के रस में मग्न था और मनुष्यों के चंचल चित्त को भी एकाग्र करने वाले विस्मयोत्पादक सुख में डूबा राजभोगों को भोगता हुआ समय बिताता था।। 7-11।।

एक दिन वह कान्तिशील सिंहासन पर सुख से बैठा हुआ था और सुन्दरियाँ उसे घेर कर बैठी थी। उसने अपने रसिक वेश को देखने के लिये दर्पण उठाया और अपने रूप और वैभव को देखकर प्रसन्न हुआ। अचानक उसे अपने केशों में एक सफ़ेद बाल दिख पड़ा। उसे देखकर वह तत्क्षण ही गृह सम्पत्ति और अपने शरीर से भी विरक्त हो गया।। 12-14।।

इसके बाद अपने पुत्र को राज सौंपकर गृह त्यागकर किन्हीं मुनि के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर उसने उनसे तपदीक्षा ग्रहण की। तप करके पापों को जलाकर आयु के अन्त में तपः- पूत शरीर छोड़कर वह सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ देवों के सुख भोगने लगा।

वहाँ की आयु समाप्त होने पर च्युत होकर यह तिलिंग का राजा अमृतविजय हुआ है।। 15-18।।

इसने पूर्व जन्म में तुम्हारा मानभंग किया था इसलिये समय पाकर महासेनायुक्त होकर अपना मानभंग कराने के लिये तुमसे युद्ध करने आया और यही बैर का कारण है।। 19-20।।

अब तुम दोनों बैर भाव छोड़कर यहाँ बैठे हो। सुख और दु:ख, जय और पराजय, लाभ और अलाभ, प्रेम और बैर, रक्षा और विनाश तथा अन्य सभी घटनाएँ अपने स्वभाव के अनुसार समय पाकर ही होती हैं, हे राजन् इसमें अन्य कुछ विचारने की बात नहीं है।। 21-23।।

भगवान के मुखकाल से निकली दिव्यवाणी को सुनकर धनंजय आदिक राजाओं को संसार से निर्वेद हो गया और वे इस प्रकार विचार करने लगे। अरे यह संसार घोर दु:ख का कारण है, जीव इसमें चारों गतियों में घूमता रहता है। पुण्य और पाप के उदय में सुखी और दुखी होता है। इस संसार में किसी को तो सुख है और किसी को दु:ख, किसी का सम्मान होता है तो किसी का अपमान। किसी का धन छीना जाता है और किसी दूसरे को मिल जाता है। किसी की रक्षा की जाती है और किसी को क्रोधपूर्वक मार डाला जाता है। इस प्रकार यह तो संसार का स्वभाव है और मोह के उदय से अपने भावों के अनुसार प्राणी ऊपर से नीचे घूमता है।

यह धिक्कार की बात है- संसार, जीव का असद्गुण है। भीषण संसार में प्राणी अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करता है पर उनसे केवल दु:ख का ही भागी बनता है। सुख की तो बात ही बात है, किसी के अलग होने पर दु:ख ही देखा जाता है। जिस वस्तु को प्राप्त करके जीव प्रसन्न होता है उसके नष्ट हो जाने पर पश्चाताप और तिरस्कारपूर्वक अत्यन्त दुखी होता है। राज्य, धन, जवानी, देह, भोग, पुत्र, कलत्र आदि के सुख भी इसी प्रकार के हैं। उनमें स्नेह बुद्धि रखना व्यर्थ है। इसलिये अपना कल्याण चाहने वाले जीव को बुद्धिमान बनना चाहिए और वही मार्ग ग्रहण करना चाहिए जो सज्जनों द्वारा दिखाया गया है।। 24-28।।

जिसमें न मोह है, न क्लेश है, न भ्रम है और न मिथ्यामति है। न काम है, न क्रोध है, न लोभ है, न मात्सर्य है और न राग द्वेष ही है। हिंसा आदि दुष्ट भावों का वहाँ नामोनिशान भी नहीं है। वहाँ ज्ञान का सुख, भ्रम की हानि, शुभमति, निष्कामता, क्रोध का अभाव और निर्लोभपना है। वहाँ मत्सर नहीं, द्रोह नहीं और रागादिकों का क्षय हो जाता है। सभी प्राणियों में दया, क्षमा, शान्ति, सुन्दर वचन, अतुल कीर्ति, स्मृति, मेधा आदि अनेक गुणों का संगम है, इस प्रकार के साधुमार्ग पर आकर आत्मकल्याण करना चाहिए।। 38-43।।

मुनियों को प्रिय, समस्त कल्याण का मूल, सभी प्रकार के पापों के लिये दावाग्नि जैसा, विषयों के प्रति रूचिरूपी उल्लू के लिये निर्मेघ दिवस की भाँति, मन की चंचलता को शान्त करने वाला, परम स्वास्थ्य दायक, मति, श्रुत और अवधि ज्ञान का प्रवर्तक, मनःपर्यय और केवलज्ञान का कारण और परम्परा से निर्वाणरूपी वृक्ष का बीज-तप सभी प्रकार के परिग्रह को त्यागकर ग्रहण करना चाहिए।। 44-47।।

यह भगवान का समवशरण है: भगवान स्वयं विराजमान हैं। तपस्वी मुनि और संयमी एकत्र हैं। ऐसा मौका फिर कभी मिलने का नहीं अत: यहीं संयम ग्रहण करना चाहिए। ऐसा विचार कर धनंजय, अमृतविजय, नंग और अनंग दोनों कुमार तथा अन्य पन्द्रह सौ राजा त्रिभुवनपति भगवान के समवशरण में युद्ध संयम ग्रहण करके मुनि हो गये। पहले राज्य किया, राज्यभोग भोगे, कीर्ति प्राप्त की और अन्त में संयम ले लिया इस प्रकार का जन्म दुर्लभ है।। 48-53।।

भगवान का समवशरण विहार करता हुआ स्वर्णाचल पर पहुँचा उस उत्तम पर्वत को सिद्धक्षेत्र और पुण्यस्थल मानकर भगवान वहाँ ठहर गये। भगवान के वहाँ आने पर वद्र देश धन्य हो गया और राजा प्रजा सभी भगवान की शरण में आये। भगवान के प्रभाव से वहाँ से दुर्भिक्ष भाग गया, सुभिक्ष फैल गया और आवश्यकता के अनुसार ही जल की वर्षा होती थी। सारी भूमि हरी हरी घास से शोभित थी और धन धान्य

की तौल किसने की। प्रज़ा सुखी हो गई, दुःख उस देश से ही भाग गया। सभी मनुष्य आरोग्य एवं तुष्ट-तुष्ट हो गये और सभी उपद्रव शान्त हो गये। भगवान का तेज इतना अधिक था कि लोग शंका करते थे कि हजार सूर्य तो एकत्रित नहीं हो गये हैं अथवा उतने ही शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा तो उदित नहीं हो गये।। 55-65।।

साढ़े बारह करोड़ बाजे बजते थे, काकली स्वर गूँजता था, नृत्य और संगीत की तान छूटती थी, उसे सुनकर पर्वत के नीचे रहने वाले भाग्यशालियों का तो कहना ही क्या? जैन शास्त्रों का प्रवचन, संयम का विवेचन, द्वादशांग का श्रवण, आदि कार्य वहाँ हो रहे थे। भगवान चन्द्रप्रभ उस पर्वत पर बत्तीस लाख वर्ष तक लोगों का कल्याण करते रहे।।66-70।।

जिनेन्द्रभूषण यति धर्मवित् और धर्मशास्त्र के प्रवर्तक हैं और सद्गुणों से शोभायमान हैं।। 71।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में श्री चन्द्रप्रभ के स्वर्णाचल आने का वर्णन करने वाला सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 7।।

सातवाँ अध्याय समाप्त

आठवाँ अध्याय

इसी जम्बूद्वीप में उज्जयिनी नाम की नगरी है। वह धन धान्य से समृद्ध, दर्शनीय एवं मनोहर है। उसका अद्‌भुत एवं विशाल पर कोट है। उस नगरी में बड़े-बड़े महल हैं और उनमें कुबेर जैसे धनवान व्यक्ति रहते हैं। वे रत्नों के व्यापार करते हैं।। 1-4।।

उसके समीप में ही पुण्यदर्शना क्षिप्रा नदी बहती है, वह पुण्य दात्री है और उसमें मछलियाँ किलोलें करती हैं। उसमें मनोहर लहरें उठती हैं और उसके तट पर चक्रवाक नित्य ही क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार नदी से समृद्ध वह पुरी भूमि पर भी कुबेर द्वारा पालित अलकापुरी पर हँसती है।।5-8।।

उस नगरी में श्रीदत्त नाम का राजा राज्य करता था। वह अत्यन्त भाग्यशाली था, शीलसिन्धु था और भव्य था। समस्त प्रजा को अपने सगे पुत्रों जैसा पालता था तथा विवेकशील, श्रुतवेत्ता और दयालु था। वह शास्त्रोक्त कार्य करता था, शास्त्रविरुद्ध कार्यों से दूर रहता था और शास्रोक्त रीति से ही धन संचय करता था।। 9-11।।

उसकी पटरानी विजया थी। वह नाम से ही नहीं बल्कि अर्थ और रूप से भी विजया थी। उसने कामदेव की पत्नी को जीत लिया था इसलिए उसे विजया कहते थे, वह सौन्दर्य की राशि थी और सद्भाविनी एवं शीलवती थी। वह सती थी और पति के संकेत को सहज ही जान लेती थी। राजा श्री दत्त उसके साथ सुख का अनुभव कर रहा था। 12-14।।

बहुत समय बीत जाने पर भी किसी कर्म के उदय से उनके पुत्रोत्पत्ति नहीं हुई। पुत्र न होने के दु:ख की ज्वाला से उन दोनों का अन्त:करण जलता था और राजसुख का कोई लाभ न होता था।। 15-16।।

एक दिन रानी ने महल के गवाक्ष से विद्याशाला देखी। वहाँ नाना प्रकार के आभूषण पहने सुन्दर बालक मिष्ट स्वर से पढ़ रहे थे। उन्हें

देखकर अपनी गोद को पुत्र से खाली मानकर उसे बहुत दुःख हुआ और वह मन में चिन्ता करने लगी।। 17-19।।

संसार में वे ही स्त्रियाँ धन्य हैं, वे ही पूज्य हैं, वे ही पति को प्यारी हैं और संसार उन्हें ही मानता है जिनकी कुक्षि से पुत्ररत्न उत्पन्न हो। पुत्र के बिना स्त्री का जन्म बकरी के कण्ठ के स्तन के सदृश है। इस प्रकार सोचकर रानी मन में दुःखी हुई और उसकी आँखों से अनिवार्य आँसू झर पड़े।।20-22।।

उसी समय वहाँ राजा आ गया और रानी को रोते देखकर उसने पूछा- देवि, आँखों से आँसू आने का कारण क्या है? किन्तु लज्जा के कारण रानी राजा से कुछ न कह सकी। सिर नीचा करके सामने तृण को लेकर अपनी अंगुलियों से मलने लगी।। 23-25।।

राजा ने समझ लिया कि रानी पुत्र के न होने के दुःख से दुःखी है। राजा ऐसा सोच ही रहे थे कि उसी समय वहाँ सूर्य के समान तेजवाले दो चारण मुनि आ पहुँचे। एक का नाम आदिगत और दूसरे का नाम प्रभगत था और दोनों सूर्य चन्द्रमा जैसे लगते थे। राजा ने प्रसन्न होकर उनकी नवधा भक्ति की, प्रतिग्रहण, उच्चस्थान दान, पादप्रक्षालन, पूजन, अष्टांग नमस्कार, मनशुद्धि, वचन शुद्धि, कायशुद्धि, ऐषणाशुद्धि आदि सब कुछ किया। श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभत्व, दया, भक्ति, क्षमा, अक्रोध इन दाता के सात गुणों से युक्त राजा श्रीदत्त ने उन्हें शुद्ध रीति से आहार दान दिया। आहारदान के समय पंचाश्चर्य की वृष्टि हुई और इस प्रकार राजा ने मुनि का माहात्म्य देख लिया।। 26-36।।

आहार करके जब वे दोनों द्युतिशील मुनि आराम से बैठ गये तब राजा ने अपनी पत्नी को पुत्र के बिना दुःखी देखकर मुनि से पूछा कि हे महाराज, मेरे घर में पुत्र होगा या नहीं, कृपया इसे बतावें। क्योंकि पुत्र के बिना मेरा राज्य भी मुझे सुखद नहीं है, बड़ा सा भी वृक्ष यदि फलहीन हो तो वह शोभा को प्राप्त नहीं करता है।। 37-38।।

उत्तर में मुनि बोले कि राजन्, तुम चिन्ता छोड़ो, तुम्हारे पुत्र अवश्य होगा। तुम श्रद्धापूर्वक सोनागिरि की यात्रा करो। वह पर्वत पृथ्वी का भूषण है और अद्वितीय पुण्यक्षेत्र है। वहाँ बहुत से साधु निवास करते हैं और वह अवश्य दर्शनीय है। उसके दर्शन, पाप के पहाड़ों को खण्डित करने के लिए वज्र के समान हैं, वंदना पुण्य के समुद्र को बढ़ाने के लिए चन्द्रमा, उसकी परिक्रमा समस्त तीर्थों की शुद्धि को देने वाली और उसकी पूजा सब प्रकार से चिन्तित पदार्थ देने वाली है।। 39-44।।

उस पर्वत पर रहने से मोह नष्ट हो जाता है, संसार से विराग हो जाता है, तप के प्रति रूचि हो जाती है और सामर्थ्य भी प्राप्त हो जाती है। ज्यादा क्या कहा जाए, क्रम-क्रम से सिद्ध पद की भी प्राप्ति हो जाती है। जबकि वह पर्वत भूमि पर विद्यमान है फिर मूर्ख लोग की अपनी अभीप्सित वस्तुओं के लिए चिन्ता किया करते हैं और उसकी पूजा नहीं करते। ऐसी कौनसी अभिलाषा है, जो उस पर्वत की श्रद्धापूर्वक यात्रा करने से पूरी न हो।। 45-48।।

वह पर्वत धर्म चाहने वालों को धर्म देता है, धन चाहने वालों को धन, काम चाहने वालों को काम और मोक्ष चाहने वालों को मोक्ष देता है। हे श्रीदत्त, वह इस संसार में चारों पदार्थों का दाता है और इस समय तो वहाँ एक और अन्य दुर्लभ लाभ है। भगवान चन्द्रप्रभ विविध देशों में दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश करते हुए इस समय देवनिर्मित समवशरण सहित वहाँ स्थित हैं। चारों दिशाएँ मणि के दीपों से दीप्त हैं और मानस्तम्भ तथा तीन शालों की रचना है। विचित्र तालाब, कल्पवृक्षों के मनोहर वन, नाना प्रकार के भवन आदि से शोभित तथा मुनि, मनुष्य देव-देवीं, तिर्यंच आदि से प्रदीप्त उस पर्वत की शोभा का वर्णन करना अशक्य है। तीन लोक के स्वामी चार अंगुल प्रमाण आकाश में ऊँचे स्थित हैं और शरच्चन्द्र की भाँति सुशोभित हैं।। 49-57।।

हे धरणीपति, उन भगवान चन्द्रप्रभ के दुर्लभ दर्शनों का लाभ हो सकता है। इसलिए उनके चरणकमलों का मन में ध्यान करते हुए

विधिपूर्वक सोनागिरि की यात्रा करो। पर्वत के दर्शन कर, पूजा और परिक्रमा करके अत्यन्त नम्र होकर तीर्थ पर चन्द्रप्रभ के चरणकमलों की पूजा शुद्ध भावों से करने पर तुम्हें वंश में उजाला करने वाले पुत्र की प्राप्ति होगी।।58-61।।

मुनि के ये वाक्य सुनकर राजा और रानी अत्यन्त प्रसन्न हुए और पर्वत के अधिनायक भगवान के चरणों का ध्यान करने लगे। हम कब स्वर्णाचल पर भगवान चन्द्रप्रभ के दर्शन कर सकेंगे, इस प्रकार उनके मन में उत्साह उमड़ रहा था। (मन से तो वे सोनागिरि पहुँच गये थे) हर्ष से उनके नेत्र नाच रहे थे, मुख प्रसन्न हो रहा था, स्वर गद्‌गद हो गया था और सभी अङ्ग पुलकित हो रहे थे। उन दोनों ने मुनियों के चरणकमलों में अपना मस्तक धर दिया। 'आपने हम पर भारी अनुग्रह किया है' यह कहकर उसने फिर हाथ जोड़कर मुनिराज से पूछा- 'हे नाथ, आपने जो स्वर्णाचल का अतुल प्रभाव बताया वह किस कारण है, कृपया यह भी बताइये।' राजा का यह श्रद्धा भरा प्रश्न सुनकर मुनिराज ने जो उत्तर दिया वह अगले अध्ययन में वर्णित किया जायेगा।। 62-70।।

सत् और असत् के विभाग करने में निपुण जिनेन्द्रभूषण की बुद्धि दूध और पानी में विभेद करने वाली हंसिनी के समान उज्ज्वल है।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में श्रीदत्त और मुनि का संवाद वर्णन करने वाला आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।8।।

आठवाँ अध्याय समाप्त

नौवाँ अध्याय

मुनि बोले –

हे राजन् अपने प्रश्न का उत्तर ध्यान से सुनो। इसी द्वीप के भरतक्षेत्र में पश्चिम दिशा में धन और धान्य से समृद्ध वद्र देश है। वहाँ की जनता धनाढ्य है, सभी वस्तुओं से समृद्ध शास्त्री जन वहाँ रहते हैं और वह भूमि पर स्थित देवलोक की भाँति दर्शनीय है। उसी देश में सोनागिर उस देश के भाल पर तिलक जैसा शोभित है।। 1-4।।

मुनि के ये वाक्य सुनकर राजा फिर बोला कि हे प्रभो, गुरु के वाक्यों में मेरा पूरा विश्वास है, फिर भी मन में एक सन्देह है, उसे दूर करने के लिए कुछ और पूछना चाहता हूँ। 'वह सन्देह यह है कि उस पर्वत का नाम ही स्वर्णाचल है अथवा वह सोने का बना हुआ है।' इस सन्देह को आप दूर करें। मुनि उत्तर में बोले कि वह पर्वत सोने का ही है और इसलिए उसे सुवर्णगिरि कहते हैं केवल नाम से ही नहीं।।5-9।।

मुनीन्द्र के इस प्रकार कहने पर भद्रमित्र नाम का एक मिथ्यादृष्टि वैश्य, जो वहाँ व्यापार करता था, बोला कि हे राजन्, मैं उसी पर्वत के पास का रहने वाला हूँ, वह पर्वत पत्थर का ही है। उस वैश्य की वे बातें सुनकर क्षमासिन्धु मुनीश्वर किंचित् मुस्कुराकर बोले कि राजन् जो व्यक्ति सम्यग्दृष्टि, शीलव्रती, गुरु सेवापरायण, तपोनिष्ठ एवं जितेन्द्रिय होंगे उन्हें ही वह पर्वत सोने का दिखेगा और जिनकी आँखें मिथ्यात्व से अन्धी हो गई हैं, जो कृतघ्नी और गुरुद्रोही हैं, जो मूर्ख हैं और जिनके मन सदा विषयों में आसक्त रहते हैं उन्हें तो वह पत्थर का ही दिखेगा, इसलिए तुम संशय छोड़ो। जो जैसा होता है उसे वैसा ही दिखता है। इसलिए तुम निश्चय से उसे सोने का ही समझो।। 10-18।।

इस प्रकार मुनि के कहने से राजा ने उक्त पर्वत को अपने मन में

सोने का ही मान लिया और मुनि से बोला- हे मुनीन्द्र, आपके वचन स्वभावतः सत्य हैं, जो आपने कहा है उसमें भला संशय कहाँ से हो सकता है। अब आप उस पर्वत की यात्रा की विधि कहिए क्योंकि विधिपूर्वक किया गया कार्य ही फलप्रद होता है।। 19-22।।

राजा के इन विवेकशील वचनों को सुनकर मुनि ने प्रसन्न होकर यात्रा की विधि बताई। वे बोले- 'हे राजन् यात्रा करने वाले को सर्वप्रथम चतु:संघ की भक्ति से पूजा करनी चाहिए। यति, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन्हें चतु:संघ कहा जाता है। आर्त-चिन्ता त्यागकर विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न व्यक्तियों की नियुक्ति कर अपने चित्त को स्वस्थ कर पर्वत की यात्रा की व्यवस्था करना चाहिए। इसके बाद सर्व सुखों को करने वाली, सर्वविघ्नविनाशिनी और सभी इच्छाओं को देने वाली पंचकल्याणक पूजा यात्रा के पूर्व में तथा यात्रा के अन्त में करनी चाहिए। एक हजार आठ कलशों से श्री अर्हन्त भगवान का पंचामृत महा अभिषेक करना चाहिए। भगवान् के चरणों में मलयचन्दन का लेप करना चाहिए, शुद्ध भावों के साथ ताजे पुष्प, अक्षत, अष्टांगधूप, घृत, दीप फलादि से अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए जगत्पूज्य अर्हन्त की पूजा करनी चाहिए। पापों का नाश करने वाला और पुण्य का बढ़ाने वाला पंचकल्याणक चरित आचार्योक्त सुन्दर श्लोकों में हर्षपूर्वक भव्य जीवों के साथ भगवान के आगे पढ़ना और सुनना चाहिए। इस प्रकार नाना प्रकार से भगवान की पूजा करके उन्हें हाथी पर विराजमान कर आनन्दभेरी आदिक वाद्यों के साथ यात्रा करनी चाहिए।। 23-40।।

'जय जय' ध्वनि का उच्चारण करते हुए, भगवान का यश गाते हुए, सबके साथ संघाधिपति पद को स्वीकृत कर प्रतिदिन चार कोस मार्ग तय करना चाहिए- जिससे किसी को भी शारीरिक कष्ट न हो। क्योंकि शारीरिक कष्ट से अशक्त लोगों के हृदय में विकल्प पैदा होने लगते हैं। शास्त्रों में मार्ग में धीरे-धीरे चलने का ही आदेश है इसलिए आराम से ही चलना चाहिए।। 41-44।।

मोह शत्रु के विजयी भगवान की नित्य ही पूजा करनी चाहिए और उसी प्रकार आरती भी। इस प्रकार रास्ते में अनेक पुण्य कर्म स्वयं करना चाहिए और दूसरों से कराना चाहिए।। 45-46।।

मन, वचन, काय से शीलव्रत का पालन करना चाहिए क्योंकि शील से सब कुछ शुभ हो जाता है। शीलव्रतयुक्त व्यक्ति की सभी क्रियाएँ सफ़ल हो जाती हैं और इससे हीन व्यक्ति के कार्य निष्फल हो जाते हैं। शील से देह की शोभा है, कुल की शोभा है, विद्या, वाणी आदि सभी शील से ही शोभित हैं। इसलिए यात्रा करने वाले को शीलव्रत अवश्य पालना चाहिए।। 47-50।।

साथ में जिसके पास वस्त्र न हों, धन न हों, उन्हें निर्वाह के लिए वस्त्र और धन देना चाहिए। जो रोगी हों उनको चिकित्सा का प्रबन्ध करना चाहिए। आहारदान आदिक भी करना चाहिए। ज्यादा क्या कहूँ? संघपति का कर्तव्य है कि अपने धन का मद छोड़कर मार्ग में अपने सभी सहयात्रियों की हर प्रकार से रक्षा और पालन करे। हे राजन्, दीन दुःखियों के दुःख को दूर करने और उनके संरक्षण से जो पुण्य मिलता है, वह कहा नहीं जा सकता।। 51-56।।

इस प्रकार कहकर दोनों मुनि, राजा को वन्दना के उत्तर में आशीर्वाद देकर तुष्ट कर आकाश मार्ग से अपने इच्छित स्थान को प्रस्थान कर गये। राजा भी रानी के साथ सोनागिर के माहात्म्य और उसकी यात्रा की विधि सुनकर पुलकित शरीर होकर मुनि महाराजों के चरणों का ध्यान करने लगा।। 57-60।।

मैं कब वहाँ की यात्रा कर सकूँगा और कब मेरे भाग्य का उदय होगा कि मैं अपनी आँखों से उस पर्वत पर स्थित भगवान चन्द्रप्रभ के दर्शन कर सकूँगा। इस प्रकार चिन्ता करता हुआ और यात्रा के लिए उत्सुक राजा राज कार्य में शिथिल हो गया।। 61-63।।

अन्य कोई कार्य स्वीकृत कर लेने पर स्वभावतः मनुष्य का मन पहले कार्य में उदास हो जाता है।। 64।।

सद्धर्म के मार्ग को दिखाने वाले, पूज्य वृषचिह्नयुक्त श्री आदिनाथ जिनेन्द्र जिनेन्द्रभूषण की सदा रक्षा करें।। 65।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में श्रीदत्त राजा की स्वर्णाचल यात्रा की उत्सुकता का वर्णन करने वाला नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 9।।

नौवाँ अध्याय समाप्त

दसवाँ अध्याय

श्रीदत्त राजा का पड़ोसी और काकन्दी नगरी का राजा मानसेन मुनि के कहने पर भी स्वर्णाचल के अस्तित्व के बारे में आशङ्कित था। वह यह भी जानता था कि मुनि का कहा हुआ त्रिकाल में भी असत्य नहीं हो सकता। फिर भी उसके हृदय में द्वन्द उठ रहा था। उसने स्वर्णाचल की परीक्षा के लिए प्रयत्न करने का निश्चय किया। यह सही है कि बड़े पुरुषों के वचनों में अल्प बुद्धियों को निश्चय नहीं होता।। 1-4।।

उसके दो विद्याधर साथी थे, एक का नाम मानभद्र और दूसरे का अपराजित। उन्हें एकान्त में बुलाकर मानसेन ने कहा कि यहाँ से पश्चिम दिशा में वद्र देश में स्वर्णगिरि नाम का पर्वत विख्यात है और उसका पत्थर अत्युत्तम है। आप उसे शीघ्र ही ले आएँ क्योंकि मुझे वह राजा श्रीदत्त को दिखाना है।। 5-8।।

उसकी आज्ञा पाकर दोनों विद्याधर वायु की तेजी से वहाँ गये और उस पाषाण को लेकर शीघ्र ही मानसेन के पास वापस आ गये। मानसेन उस पाषाण को लेकर श्रीदत्त के पास पहुँचा। श्रीदत्त ने उस पाषाण को देखकर अपनी पत्नी सहित उसकी वन्दना की और एक सुन्दर और रम्य वन में अनेक पक्षियों के रव से गुञ्जित और फूलों की गन्ध और भौरों से भरे एक वृक्ष के नीचे पूजा स्थान की रचना करके उसमें स्वर्णाचल के उस पाषाण को भक्ति पूर्वक स्थापित किया। उसे देखकर हर्षित होकर मुनि के वचनों की प्रशंसा करके वह उसी क्षण यात्रा के लिए तैयार हो गया।। 9-19।।

मानसेन आदि का भी संशय मिट गया और स्वर्णाचल की यात्रा में सबको और भी अधिक श्रद्धा हो गई। बड़े लोगों के वचनों में संशय होने पर परीक्षा द्वारा सिद्ध हो जाने पर वह अधिक कार्य कारी होता है।। 20-21।।

राजा ने अङ्ग, बङ्ग, तिलङ्ग, महाराष्ट्र, काश्मीर, मालव, गौड, लाट, पाट, हंमीर, यौधेय, विनीति, कर्णाटक, द्राविड, पांचाल, गुर्जर आदि बत्तीस हज़ार देशों को स्वर्णाचल की यात्रा के लिए निमंत्रण पत्र भेजा और जिन जिन राजाओं ने स्वर्णाचल के माहात्म्य को सूचित करने वाला वह पत्र पढ़ा वे सभी अपने पौर-जनपदों के साथ यात्रा के लिए तैयार हो गये।। 22-26।।

वे सभी राजा अपने देश में मङ्गल कार्य करके भेरी आदि नाना वाद्यों की ध्वनि से प्रसन्न होते हुए शीघ्रता से श्रीदत्त के नगर के प्रति चले और उनके पहुँचने पर श्रीदत्त ने हर्षित होकर उन सबका अनेक प्रकार से स्वागत सत्कार किया और सन्मान पूर्वक ठहराया।। 27-29।।

अब तक बड़ा भारी संघ बन गया और उसकी संख्या बत्तीस हजारा अक्षौहिणी के बराबर हो गई। अक्षौहिणी का प्रमाण इस प्रकार है- दस हजार हाथी और उतने ही घोड़े। प्रत्येक घोड़े के हिसाब से सौ योद्धा- जहाँ ये एकत्र हों वह एक अक्षौहिणी कहलाती है। इस प्रकार की बत्तीस हजार अक्षौहिणियों समेत संघाधिपति श्रीदत्त श्री स्वर्णगिरि की यात्रा के लिए चला।। 30-34।।

मार्ग में राजा ने भक्तिभाव से भगवान का महाभिषेक किया। सर्वप्रथम भद्रशाल वन की कृत्रिम रचना की जिसके देखने से ही चित्त मोह जाता था। उस पर अच्छे शिल्पियों ने पांडुक शिला बनाई और उस पर अर्हन्त भगवान की सुन्दर और भव्य प्रतिमा की रत्नजटित सोने के सिंहासन पर विधिपूर्वक भक्तिभाव से स्थापना की। श्रावकों और भव्यों ने 'जय जय' कहकर वन्दना की।। 35-39।।

इसके बाद जिस प्रकार इन्द्र ने देवों के साथ पहले भगवान का अभिषेक किया था उसी प्रकार श्रीदत्त ने भी अन्य राजाओं के साथ सोने के बने एक हजार आठ कलशों से विधिपूर्वक महाभिषेक किया। राजा के महाभिषेक में इन्द्र के महाभिषेक से कुछ विशेषता ही रही।। 40-42।।

यदि कोई यह पूछे कि मनुष्य में इन्द्र से भी अधिक विशेषता कैसे आ गई तो कर्मभूमि के भव्यों में इन्द्र से अधिक विशेषता होना स्वाभाविक है। पंचामृत अभिषेक करने में पृथ्वी का भव्य ही समर्थ है। व्रती मनुष्य जो चरम देहधारी हैं, वे वैराग्य प्राप्त कर संयम ग्रहण कर उग्र तप द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। श्रीदत्त भी चरमांग शरीरी है और इसलिए वह इसी शरीर से मोक्ष जायेगा। इस प्रकार कर्मभूमि के प्राणियों में इन्द्र से भी अधिक विशेषता है। फलभूमि के प्राणियों में वैराग्य होना अत्यन्त दुर्लभ है, वहाँ तो वे फल भोगते हैं, वैराग्य कहाँ से हो। वैराग्य अन्तरंग से होता है और भोगों का त्याग अत्यन्त कठिन है और भोग त्याग किये बिना तप कैसे हो सकता है। तप के बिना घातिकर्मों का नाश कैसे होगा और घाति कर्मों के नाश किये बिना केवल ज्ञान नहीं हो सकता। बिना केवल ज्ञान के मोक्ष दुर्लभ है। इसलिए देव लोग स्वरूप से विशिष्ट अवश्य हैं, पर यथार्थ में नहीं।। 43-54।।

पुण्यात्मा मनुष्यों के हृदय में कभी-कभी स्वाभाविक वैराग्य हो जाता है और भोग त्याग के बाद तप, फिर कर्मनाश और फिर ज्ञान प्राप्ति हो जाती है। ज्ञानप्राप्ति होने से निर्वाण की प्राप्ति होती है।। 55-57।।

राजा श्रीदत्त ने महाभिषेक के समय शास्त्रसङ्गत तरीके से विघ्नों का नाश करने वाले नवग्रहों- सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहू और केतु तथा दश दिक्पालों- इन्द्र, धनंजय, यम, नैर्ऋत, वरुण, मारुत, कुबेर, ईशान, भवनेन्द्र और सोम तथा सभी क्षेत्रपालों की स्थापना की और उन्हें विधिवत् पूज कर अनेक उत्सवों सहित भगवान अर्हन्त की पंचकल्याणक पूजा की। उस समय कहीं भव्य लोग स्तुति पाठ कर रहे थे, कहीं शास्त्रप्रवचन हो रहा था, कहीं जय जय ध्वनि होती थी, कहीं बाजे बज रहे थे, कहीं गीत और नृत्य हो रहे थे। इस प्रकार भगवान की पूजा में नाना प्रकार के मंगल कार्य हो रहे हैं।। 58-64।।

इसके पश्चात् राजा श्रीदत्त ने भक्तिभाव से महान उत्साह सहित आभूषणों से अलंकृत तुष्ट महा गजेन्द्र पर प्रेम से भगवान् को सादर

स्थापित करके प्रस्थान के समय भेरी बजवाई जिसे सुनकर संघ के सभी लोग यात्रा के लिए तैयार हो गये। सब लोग प्रसन्न होकर अपनी सवारियों पर सवार हो गये। सब राजाओं के चलने पर हर्ष भरा कलकल स्वर हो रहा था। राजा बहुमूल्य वस्त्राभरण पहने थे और देवों जैसे लगते थे।।65-71।।

कोई आगे आगे जिनेन्द्र भगवान की जय बोलते थे, कोई भगवान के दोनों ओर श्रद्धा से दबे हुए चल रहे थे और श्रीदत्त मुख्य राजाओं के साथ बीच में सुशोभित हो रहा था।। 72-73।।

श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण यतीन्द्र है, सत्कर्म में रुचिशील है, भव्यरूपी कमलों के लिए सूर्य हैं और वाणीरूपी किरणों में अन्धकार को नष्ट करके वस्तु तत्त्व का प्रकाश हैं।। 74।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में श्रीदत्त की यात्रा का वर्णन करने वाला दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 10।।

दसवाँ अध्याय समाप्त

ग्यारहवाँ अध्याय

इसके बाद श्रीदत्त महाराज भगवान को आगे करके प्रसन्नचित से भगवान का गुणगान करते और अपने साथियों पर प्रेमदृष्टि रखते आगे चले। दूसरे भव्य लोग उनकी प्रशंसा करते थे कि वह राजा धन्य है जिसके उद्यम से हमें स्वर्णाचल के दर्शन होंगे। श्रम के कष्ट को विचार कर वे लोग प्रतिदिन चार कोस मार्ग तय करते थे जिससे कि यात्रा करने वाले मनुष्यों तथा तिर्यंचों को विशेष कष्ट न हो।। 1-8।।

इस प्रकार विश्राम करते और चलते-चलते कई दिनों में वे लोग सुवर्णगिरि सिद्धक्षेत्र के निकट जा पहुँचे। उन्होंने दूर से ही भूसुन्दरी के चूड़ारत्न और भगवान चन्द्रप्रभयुक्त उस पुण्य पर्वत को देखा। उसे देखते ही उनका हृदय सुख से भर गया और शरद्काल की रात्रि में चन्द्रमा को देखकर जैसी प्रसन्नता चकोर को होती है वैसी ही प्रसन्नता इन्हें भी हुई।।9-14।।

भगवान के समवशरण से ज्योति की किरणें निकल रही थी और संसार भर रहा था। असंख्य मणिदीपों की एकत्र ज्योति को देखकर राजा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। दूर से ही उसे देखकर धर्मज्ञ राजा ने तथा अन्य सभी राजाओं ने अपने वाहन हाथी-घोड़े छोड़कर पैदल चलकर बड़े हर्ष से सुवर्णगिरि की वन्दना की और चमर छत्र सिंहासन आदि छोड़कर तीर्थयात्रा के उद्देश्य से वहीं ठहर गये।।15-19।।

सवेरे ही उनके दर्शन के उत्साह और प्रमोद से उन राजाओं को नित्य की तरह नींद नहीं आई और प्रातः ही स्नानादि करके वे स्वर्णाचल की पूजा को चल दिए। वहाँ पहुँचकर भगवान के समवशरण में देवियों के गायन सुनकर अपूर्व हर्ष से वे अपने शरीर को भी भूल गये। सबने भक्तिभाव से पूजा कर साष्टांग नमस्कार किया। इसके बाद सबने स्वर्णाचल की प्रदक्षिणा दी और इसमें उन्हें जो आनन्द हुआ वह करोड़ों जिह्वाओं

से भी अवर्णनीय है। प्रदक्षिणा करने के बाद वे पर्वत पर चढ़े और वहाँ चन्द्रप्रभु के समवशरण की सिर नवाकर वन्दना की।। 20-29।।

सबने भावों सहित उसकी तीन प्रदक्षिणा की और महान जय ध्वनि की। प्रदक्षिणा में उन्हें वह आनन्द मिला कि वे अपने को जरा और मरण से मुक्त समझने लगे। इसके पश्चात् श्रीमान् चन्द्रप्रभ भगवान के दर्शन कर वे कृतकृत्य हो गए और उंन्हें नमस्कार करके, नाना प्रकार के स्तवन आदि से पूजा करके उनकी, कृपादृष्टि प्राप्त करके उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। परमानन्द के समुद्र में गोते लगाता हुआ संघ भगवान के सम्मुख बैठ गया।। 30-35।।

अब एक अन्य कथा कही जाती है, साधु लोग उसे श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक सुनें। इस द्वीप में विजयार्ध नामक गगनस्पर्शी पर्वत है, उसमें विद्याधर निवास करते हैं। विद्याधर अपने पूर्व संचित पुण्य के उदय से विद्याधरियों सहित नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं और अपनी विद्या के प्रभाव से सब कुछ कर सकने में समर्थ हैं।। 36-39।।

उस पर्वत की उत्तर श्रेणी में अलका पुरी है। वह विचित्र गृह और सुखद वस्तुओं से समृद्ध होने के कारण परित: सुशोभित है। वहाँ अनेक उपवन हैं, अनेक छोटे-छोटे सरोवर हैं और पक्षियों के स्वर से सरस्वती का निवास मालूम होता है।। 40-42।।

वहाँ विद्याधरों का राजा महाबलशाली पवनवेग शासन करता था। वह विद्यावान था और विद्याधर उसके चरणों की सेवा करते थे। जयावती नाम की उसकी अत्यन्त सुन्दरी, विशालाक्षी और शरद की सौम्यता को भी जीतने वाली सुन्दर मुखी रानी थी। रति में वह दूसरी रति थी, कान्ति में कौमुदी थी और सोने जैसे रूप से बिजली जैसी थी।। 43-46।।

उसके साथ राजा क्रीड़ागृह में काम से विह्वल होकर सदा वैषयिक सुख भोगता रहता था।। 47।।

उसी उत्तर श्रेणी में ऊपर की ओर तिलक पुरी थी। उसमें राजा

चिंतामणि राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम प्रभावती था। वह अपने मुख की सुन्दरता से सभी को आह्लादित करती थी और शरद ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्रमा को भी लजा देती थी। उसके नेत्रों से हारकर मृग भी वनों में जा छिपते थे और बड़ी कठिनाई से ढूँढने पर दिखाई देते थे। उसकी आँखों की बराबरी करने के लिए कमल भी तपस्या करते थे। काम देव उसकी भौंहों को धनुष बनाकर उस पर नासिका का बाण चढ़ा कर संसार को जीत चुका था। उसके कर्णों का आभूषण ताटंक सहज ही चन्द्रमा को जीत लेता था। वह बिम्बोष्ठी थी, उसकी हँसी मधुर थी, उसका स्वर मीठा था और स्वर से उसने कोयल को जीत लिया था। उसके कपोल सुन्दर थे, चिबुक सुन्दर थी, शंख जैसा सुन्दर कण्ठ था और सुन्दर भुजाएँ थीं। हथेलियों की लालिमा से तो पल्लव भी हार गए थे। उसके सुन्दर वक्षस्थल पर कुच स्वर्णकलश जैसे शोभित थे। उसकी कमर पतली थी, उदर हलका था और इसी प्रकार ऊपरी अंगों की भाँति नीचे के अंग भी सुन्दर थे। वह धर्म में रत थी, शीलवती और पतिव्रता थी।।48-58।।

चिन्तागति को अपना इष्ट देव मान कर सदाचार पूर्वक स्त्री के योग्य कर्तव्य का पालन करती और उसे सन्तुष्ट रखती थी। राजा भी उसी अपने प्राणों से प्रिय मानकर पुरुषोचित कर्त्तव्य करता हुआ उसे सन्तुष्ट रखता था। राजा चिन्तामणि सामान्य राजा था और वह पवनवेग का सेवक बनकर सुखपूर्वक अपना शासक कार्य चलाता था।। 59-62।।

जिनेन्द्रभूषण धर्म की वृद्धि के लिए धर्ममार्ग से ही द्रव्य एकत्र कर धर्मकार्यों में उसे खर्च करने में उदार हैं।। 63।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में श्रीदत्त की स्वर्णाचल यात्रा की वर्णन करने वाला ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 11।।

ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त

बारहवाँ अध्याय

एक समय राजा चिन्तागति ने पवनवेग को प्रसन्न करने के लिए अमृत जैसी मिष्ट भोजन सामग्री तैयार कराई और उस विद्याधर राजा को निमन्त्रित किया। उसने भी अपने सेवक के अनुरोध को स्वीकार कर लिया और अपने संघ सहित उसके घर पहुँचा।। 1-4।।

उसने विधिपूर्वक पवनवेग का स्वागत किया और पवनवेग ने प्रीतिपूर्वक उसके घर में भोजन किया। इसी बीच उसकी दृष्टि प्रभावती पर पड़ गई जो अपनी कान्ति से बिजली को भी जला रही थी। पवनवेग उसे देखकर कामातुर हो गया और उसे प्राप्त करने की इच्छा करने लगा। चिंतागति ने इतने दिनों उसकी सेवा की थी किन्तु कामेच्छा तो उपकार को छिपा देती है।। 5-8।।

काम के वश होकर लोग सुखद धर्म को छोड़ देते हैं और दुःखदायी पाप को स्वीकार कर लेते हैं। काम के वश होकर लोग पिता-माता, मित्र और बन्धु की हत्या कर डालते हैं। काम से ही पराई स्त्री और पराये धन के प्रति आकर्षण होता है, संक्षेप में काम ही सब पापों की जड़ है।। 9-11।।

काम सबसे बड़ा ठग है। दुनियाँ में काम जैसा शत्रु कोई दूसरा नहीं जो मित्र बनकर शत्रु का कार्य करता है। इसलिए विवेकी और संसार से डरने वाले मनुष्यों को अधर्मवर्धक काम से दूर भागना चाहिए।। 12-14।।

विद्याधर राजा ने काम के सन्ताप से तपकर प्रयत्न-पूर्वक प्रभावती का हरण कर लिया और चिन्तागति अपने मन में अत्यन्त लज्जित होकर उसे जीतने में अपने को असमर्थ पा घर से निकल पड़ा। उसे जीतने की इच्छा से विद्या सिद्ध करने के लिए वह ह्रीमान् नाम के पर्वत पर गया और वहाँ निवास करके बड़े कष्ट से दिन-रात साधना करके प्रज्ञप्ति नाम की विद्या को उसने सिद्ध कर लिया। समय पर वह विद्या उसे मिल गई

और उसे प्राप्त करके वह चिन्तागति राजा युद्ध में अजेय हो गया। भला विद्या से कौन नहीं अजेय बन जाता।। 15-20।।

विद्या से धर्म और अर्थ की कामना तो क्या निर्वाण भी प्राप्त हो जाता है। विद्या माता है, विद्या पिता है, विद्या बन्धु है, विद्या मित्र है, विद्या धन है, विद्या सुख है और विद्या सब कुछ देने वाली है।। 21-22।।

प्रज्ञप्ति विद्या के बल से उसने बड़ी भारी अजेय सेना तैयार कर ली। उसमें शत्रुओं के मान को मर्दन करने वाले मदान्ध हाथी और हवा जैसे तेज घोड़े थे, देवों के रथों जैसे मनोरम रथ थे और शास्त्रधारी पर्वताकार सामन्त थे। अपने को अब पवनवेग से लड़ने योग्य मान कर और अपनी सेना को पूर्ण देखकर सेना लेकर अत्यन्त प्रचण्ड रूप धारण कर वह क्रोध से आँखें लाल करता हुआ पवनवेग से युद्ध करने आ पहुँचा।।23-27।।

बादलों की गड़गड़ाहट जैसा उसकी सेना का हल्ला सुनकर शीलवती और पति व्रता प्रभावती पंचनमस्कार मन्त्र का जाप करने लगी। दुर्भाग्य से पिंजरे में बँधी हंसिनी की भांति वह भगवान का ध्यान करने लगी। पवनवेग भी सेना के बाजों का स्वर सुनकर समझ गया कि चिन्तागति अपनी पत्नी को छुड़ाने के लिए आ पहुँचा है। वह क्रोधित और उत्तेजित होकर शत्रु को तिल के बराबर मानता हुआ अपनी सेना सहित युद्ध के लिए निकल पड़ा।। 28-32।।

विद्याधर लोग अपने राजा को घेरकर नाना सवारियों पर आरूढ़ होकर चल दिए। पवनवेग को रण के लिए आता देख उदार चिन्तागति ने अपनी विद्या से निर्मित सेना को प्रोत्साहन दिया और दोनों सेनाओं के बीच भारी युद्ध हुआ। दोनों सेनाओं के मिल जाने पर शस्त्रास्त्र का उपयोग होने लगा। विद्या से निर्मित सेना ने बिना परिश्रम के ही पवनवेग की सेना को शीघ्र ही जीत लिया और चिन्तागति ने अपनी स्त्री को हरण करने वाले लँपट और दुर्गति पवनवेग की चोटी पकड़ कर उसका सिर काट लिया।। 33-39।।

युद्ध में विजय प्राप्त कर अपने को कृतकृत्य मानकर प्रसन्न होकर पवनवेग के सिर को धिक्कारते हुए उसे भूमि पर पटक दिया। भूमि पर गिर जाने पर क्रोध से उसके मन में हुआ कि उस सिर को फिर उठा ले। संग्राम में उसकी विजय के बाजे बजने लगे। धर्म की सर्वत्र विजय होती है।।40-42।।

धर्म से मोह तक जीत लिया जाता है फिर और शत्रुओं की क्या बात! इसलिए सदा धर्म का सेवन करना चाहिए। इसके बाद प्रसन्न होकर वही अपनी धर्मात्मा पत्नी को लेकर परिवार-सहित आकाश मार्ग से स्वर्णाचल पर स्थित, संसार के नाथ, चन्द्रप्रभु के निकट पहुँचा।।43-45।।

वहाँ विभूति सम्पन्न अनेक वाद्य बज रहे थे और उनसे दिशाएँ गूँज रही थीं। नंगसेन, अनंगसेन आदि मुनीश्वरों और गणधरों से बारह कोठे भरे हुए थे। लोग भगवान की वंदना, स्तुति-पूजा और ध्यान में लगे हुए थे। विचित्र रत्नों की शोभा तो कौन वर्णन कर सकता है। उस प्रभाशील और अनेक उत्सवों से भरे समवशरण को देखकर चिन्तागति सुख के समुद्र में डूब गया।।46-49।।

बाजों की सुन्दर आवाज सुनकर चिन्तागति प्रसन्न होकर शीघ्र ही भूमि पर उतर आया और समवशरण के मानस्तम्भ को देखकर उसे वैराग्य हो गया। ये स्तम्भ भव्यों के मान को स्तम्भित कर देते हैं। इसलिए इन्हें मानस्तम्भ कहा जाता है।।50-53।।

अद्भुत द्युति वाले उन मानस्तम्भों को देखकर राजा का सब मान एक साथ ही गल गया। जातिमान, वर्णमान, देहमान, विद्यामान, धनमान, सुखमान तथा ऐश्वर्यमान आदि इसी प्रकार के मान से बँधकर जीव संसार में भ्रमण करता है। मानस्तम्भ के दर्शन से राजा चिन्तागति का इन सभी प्रकार के मान से छुटकारा होने से उसका बोझ उतर गया।। 54-58।।

विमान से भूमि पर उतर कर भक्ति से स्वर्णाचल की वन्दना कर

वह आगे चला। उसके हृदय में सभी जीवों के प्रति दया उत्पन्न हो गई। वह दया सभी प्रकार के सन्तापों को नाश कर देती है और महाकल्याणकारी है। उस दया के वशीभूत होकर राजा भूमि देख-देख कर पैर रखता था और राजर्षि जैसा शोभित होता था। महान स्थान पर पहुँच जाने पर किसे सम्यक्त्व नहीं हो जाता, जैसे स्वर्णाचल को देखकर राजा को हो गया।।59-62।।

उदार चिन्तागति अपनी भावनाओं को नम्र बना के रोमांचित होकर पर्वतराज पर चढ़ा और वहाँ भगवान के समवशरण के दर्शन कर परम आनन्दित हुआ। समवशरण में प्रवेश कर उसने चन्द्रप्रभ भगवान को देखा। वे तीन मेखलायुक्त आसन पर विराजमान थे, उनके ऊपर अद्भुत छत्र सुशोभित थे और कान्ति से वे सूर्य से प्रतीत होते थे। भव्यों के महान्धकार को दूर करने वाले गणधरों के बीच सुशोभित थे। जीवों पर दया करके वे धर्मोपदेश करते थे। उनके दर्शन कर वह अपूर्व सुखी हुआ। वह साष्टांग प्रणाम करने के लिए भगवान के आगे डण्डे जैसा सीधा गिर पड़ा और इसके बाद उठकर अत्यन्त भक्तिभाव से भगवान की तीन प्रदक्षिणा कर अपने योग्य कोठे में जाकर बैठ गया।।63-70।।

श्री जिनेन्द्रभूषण के कारण इस लोक के लोगों में धर्म की वृद्धि होती है, दयावान धर्मात्मा और सुन्दर व्यक्ति के देखने से किसके धर्म की वृद्धि नहीं होती है।।71।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में चिन्तागति का आगमन वर्णन करने वाला बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।12।।

बारहवाँ अध्याय समाप्त

तेरहवाँ अध्याय

श्री भगवान के मुखकमल से तत्त्व का प्रकाशक दिव्यध्वनि रूपी अमृत पीकर भव्य लोग सन्तुष्ट हो गए। उस अमृत को पीकर राजा का हृदय शीतल हो गया और वह संसार को अनेक दुःखों का समुद्र, चतुर्निकाय और चतुर्गति का कारण तथा विकल्पयुक्त दुःख और सुख से मन का चंचल बना देने वाला समझने लगा। उसी क्षण उसे निर्वेद हो गया। विरागी चिन्तागति ने उसी समय जन्म और मृत्यु की जंजीर को तोड़ने वाली, मोहरूपी शत्रु का नाश करने वाली, पुण्य देने वाली विशुद्ध आर्हती दीक्षा ग्रहण कर ली। हजारों अन्य राजाओं ने भी यह देखकर संसार से विरक्त होकर वैराग्य भाव से श्रद्धा और प्रसन्नता से निर्वाण की कारणभूत जैनी दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्य सामान्य मनुष्य भी इसी प्रकार विरक्त हो गए और इस प्रकार मुनियों की संख्या तीन लाख हो गई।। 1-10।।

भव्य भावों तथा दीर्घ तपस्या द्वारा चिन्तागति, पूर्णचन्द्र, अशोक सेन आदि कर्माटवी को जलाकर केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध हो गए। सिद्धालय की प्राप्ति के लिए काल का कोई प्रमाण नहीं है, जब कर्मों का नाश हो जाए तभी मोक्ष हो जाता है। किन्हीं को देर से, किन्हीं को जल्दी ही कर्मों का नाश होकर मुक्ति हो जाती है। उन सब को इतने शीघ्र मुक्त होते देख श्रीदत्त ने उनकी अत्यन्त भक्ति की। महात्माओं का जो प्रभाव उसने यहाँ देखा वह किसे आश्चर्य नहीं करता।। 11-16।।

राजा श्रीदत्त पाँच दिन स्वर्णाचल पर्वत पर भगवान चन्द्रप्रभ की सेवा में रहा। पर्वत और भगवान की पूजा और वन्दना के साथ आलस्य रहित होकर उसने रात्रि में जागरण भी किया। उसके प्रत्येक रोम में स्वर्णाचल और भगवान चन्द्रप्रभु की दृढ़ भक्ति भर गई। अन्त में भगवान की परिक्रमा कर पर्वत की स्तुति और प्रणाम तथा प्रदक्षिणा कर वह चला। जैसे वह सुखपूर्वक आया था उसी प्रकार संघ-सहित अपने घर पहुँचा। पहले के समान महोत्सवपूर्वक भगवान की पूजा करके विभिन्न

देशों से आने वाले राजाओं को विदा किया। 'आपके द्वारा ही हमें महायात्रा का फल मिला, आप धन्य हैं' ऐसा कहकर सभी राजा अपने-अपने नगर चले गये।। 17-23।।

राजा और रानी स्वर्णाचल पर्वत की बार-बार प्रशंसा करते थे और अपने हृदय में चन्द्रप्रभ का स्मरण करके मुनि वाक्यों पर विशेष श्रद्धा करने लगे थे। एक दिन रानी चौथे दिन का स्नान करके अपने महल में सोने के पलङ्ग पर सुख से सोई हुई थी। रात्रि के आखिरी प्रहर में उसने स्वप्न में ऐरावत हाथी, समुद्र, कमलयुक्त लक्ष्मी, सिंह देखे और प्रातः होते ही वह हर्षित होकर जाग पड़ी। इन स्वप्नों के देखने से उसे विस्मय और आनन्द दोनों हो रहे थे। अपने पति के पास आकर उसने वे स्वप्न सुनाये।। 24-30।।

वे स्वप्न सुनकर आनन्दित होकर राजा देवी के साथ शीघ्र ही महल से निकल आया और सागरदत्त नामक मुनि के पास पहुँचा। उनकी तीन परिक्रमा कर हाथ जोड़ राजा ने पूछा कि महाराज रानी ने चार स्वप्न देखे हैं, कृपया उनका फल बताइये। अवधिज्ञान के बल से मुनि ने राजा को स्वप्नों का फल बताया कि तेरे घर में निश्चय से पुत्र की उत्पत्ति होगी और वह समस्त संसार के पुत्रों में श्रेष्ठ होगा, प्रभावशाली होगा। सुन्दर और सुशील होगा, महाबली होगा, शत्रुओं को जीतकर विश्वविख्यात एवं लक्ष्मीनिधि हो जायेगा। अन्त में इसी भव में जैनी दीक्षा ग्रहण कर तपरूपी अग्नि से कर्मों के वन को जला कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा।। 31-38।।

मुनि के ये सच्चे वचन सुनकर प्रसन्न होकर राजा श्रीदत्त ने रानी सहित मुनि की प्रदक्षिणा की और उन्हें नमस्कार करके हर्ष से रोमांचित होता हुआ अपने महल वापस लौटा। रानी गर्भवती हो गई और पुत्र दर्शन की कामना से वह धर्म कार्यों में और भी रत हो गई। उसी दिन से राजा ने सुगन्धित जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, अष्टांगधूप, स्वर्णदीप, घृत तथा स्वादु फलों से भगवान की पूजा, स्तुति और प्रणाम करके भावी पुत्र के

हर्ष में विविध दान किये। उस उदार राजा ने पात्रों को, याचकों को एवं विद्वानों को भक्तिपूर्वक दान किये। उसी प्रकार पुत्र के मुख के देखने की इच्छा से रानी ने भी अनेक प्रकार के दान दिये।। 39-47।।

इस प्रकार धर्म कार्य करते रानी को नौ महीने बीत गये। दसवें माह में शुभ दिन, शुभ मूहुर्त्त, शुभ नक्षत्र और शुभ योग में स्वर्ण दीपकों से प्रदीप्त प्रसूति भवन में सोने की शय्या पर बालक का जन्म हुआ जिस प्रकार पूर्व दिशा से सूर्य उदित होता है। उस पुत्र से रानी ऐसी शोभित हुई जैसे जैन शास्त्रोक्त सद्धर्म से बुद्धि शोभित होती है। पुत्र प्राप्त कर रानी परम सन्तुष्ट हुई। सत्पुत्र की प्राप्ति से बढ़कर कोई अन्य तोष है ही नहीं। पुत्र का जन्म सुनकर राजा श्रीदत्त आनन्द सागर से डूब गया। दरबार में ज्योतिषियों से यह मालूम कर कि पुत्र का भाग्य बहुत अच्छा है, उसने उन्हें बहुत सा धन दे दिया। याचकों को प्रसन्नता से गाँव, हाथी, घोड़े, सोने के रथ और अमूल्य आभूषण दे दिये।। 48-56।।

राजमहल में प्रसन्नता छा गई थी, मांगलिक दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे गायक लोग मांगलिक गान गाने लगे, उसी प्रकार नर्तकियाँ हर्षित होकर नृत्य करने लगी। राजा ने पुत्र जन्मोत्सव की खुशी में गायकों, वादकों, नर्तक-नर्तकियों तथा बन्दियों को उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें सन्तुष्ट किया।। 57-60।।

सुमति के समुद्र, वाणी में बृहस्पति, गुणों की खान, यतियों में मणि, पुण्यात्मा जिनेन्द्रभूषण संसार में सदा जयशील हों।। 61।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में श्रीदत्त राजा के पुत्रलाभ का वर्णन करने वाला तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 13।।

तेरहवाँ अध्याय समाप्त

चौदहवाँ अध्याय

राजा ने पुत्र का सोने जैसा रूप देखकर प्रसन्न होकर उसका सुवर्णभद्र नाम रखा और उसके अनुरूप देखने में विस्मयकारी सोने और रत्न के आभूषण उसे पहनाये। बालक तो स्वभाव ही से सुन्दर था, आभूषणों के पहनने से वह नवोदित बालसूर्य जैया शोभित हुआ। दो-दो दाँत दिखाकर तोतली बोली बोलकर वह माता-पिता के मन को मोह लेता था। जब बालक रत्नों से प्रदीप्त आँगन में घुटनों के बल अनेक चेष्टाएँ करता हुआ चलता था तो बड़ा भला मालूम होता था और उसे देखकर माता-पिता अत्यन्त प्रसन्न होते थे।। 1-7।।

इस प्रकार बाल्यावस्था पार कर कुमार अवस्था में आने पर वह गुरुशाला में भेजा गया और वहाँ पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से गुरु के मुख से निकलते ही उसने सब प्रकार की विद्याएँ सीख लीं। उसकी जिह्वा में सरस्वती निवास करती थीं और उसका स्वर अत्यन्त मधुर था। माँ के मन में पुत्र के वियोग की जो व्यथा थी वह बालक को पढ़ते देखकर, उसके मुख से स्पष्ट और शुद्ध पाठ सुनकर दूर हो गई। उसने शास्त्रविद्या, शस्त्रविद्या, हस्तविद्या, अश्वविद्या तथा अन्य और भी विद्याएँ अल्पकाल में ही सीख ली और वह विद्यारूपी रत्नों से भरे समुद्र जैसा शोभित होता था।।8-13।।

जब कुमार युवक हो गया तो श्रीदत्त ने बड़ी प्रीति से बड़े उत्सव और ठाट-बाट से उसका विवाह कर दिया। राजकुमारी भी उस शरच्चन्द्र जैसे सुन्दर एवं मधुरालापी और हितैषी राजकुमार को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुई और वह चन्द्रमा की सङ्गिनी तारा जैसी सुशोभित हुई। राजकुमार भी रति से भी सुन्दर उस राजकुमारी के साथ रात्रि में कान्तिमयी ज्योत्स्नायुक्त चन्द्रमा जैसा शोभित हुआ। पुत्र और पुत्रवधू को विवेकशील और नीतियुक्त देखकर पति-पत्नि को अत्यन्त आनन्द होता था।। 14-21।।

एक समय नङ्गसेन और अनङ्गसेन दोनों करुणासागर मुनि, मुनि संघ के साथ पुण्य देशों में विहार कर जैन शासन का प्रचार करते हुए

भाग्य से श्रीदत्त राजा की नगरी में आ पहुँचे। वे दोनों सूर्य जैसे संघसहित राजा के उद्यान में ठहर गये और माली उन्हें देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ। उन्हें दूर से ही नमस्कार कर और उनके आने से अचानक ही छहों ऋतुओं के फूलों के फूलने तथा फलों के पकने से उन्हें लेकर राजा की सभा में पहुँचा। राजा को प्रणाम कर उसने वे फल और पुष्प सन्मुख रख दिये। राजा उन्हें देखकर विस्मित हुआ और उसने माली से पूछा कि ये छहों ऋतुओं के फल-फूल तुम्हें एक साथ ही कैसे मिल गये ? माली ने उत्तर में निवेदन किया कि महाराज अभी-अभी आपके उपवन में संघसहित कोई दो मुनि पधारे हैं। वे प्रताप में सूर्य जैसे, तेज में अग्नि जैसे, सौम्यता में चन्द्रमा जैसे दशों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे हैं। हे महाराज, वे दर्शनीय हैं और उनके दर्शन दुर्लभ हैं, फिर भी वे स्वयं यहाँ पधारे हैं।। 22-33।।

माली से यह सुनकर भव्यों में उत्तम राजा श्रीदत्त सहसा अपने आसन से उठ खड़ा हुआ। पुष्प आदिक देखने से उसने मुनि का अतुल प्रभाव समझ लिया और अन्य भव्यों के समूह के साथ रोमांचित होकर उनके दर्शन को चला। दूर से ही मुनियों को देखकर उसे प्रसन्नता हुई। समीप पहुँचकर उसने उनकी परिक्रमा पूर्वक अर्चना वन्दना-स्त्रोत आदि किये।।34-37।।

हे मुनिराज, आपके यहाँ पधारने से आज मेरा जन्म सफल हो गया और धर्मवृक्ष भी सहसा फूल-फल गया। निश्चित ही मेरा कल्याण होना है क्योंकि मुनियों का आगमन कल्याण के ही लिए होता है। श्रीदत्त ने इस प्रकार स्तुति कर हाथ जोड़कर मुनियों से धर्म का मार्ग पूछा। राजा की भव्यता, विनयशीलता और धर्म में गहरी श्रद्धा देखकर शरच्चन्द्रमा जैसे मुनि नङ्गसेन दाँतों की द्युति बिखराते और सभी भव्यों को सुख देते हुए संसार के स्वरूप को बताने लगे। उन्होंने संसार को समुद्र बताया और उसे पार करने के लिए धर्म को जहाज कहा।। 38-44।।

वे बोले 'राजन्, तीनों लोक में धर्म से बढ़कर कोई बन्धु नहीं है, इसलिए हर व्यक्ति को धर्म का पालन करना चाहिये। अनादिकाल से जो कष्ट चला आ रहा है, उनका छेदन करने के लिए बड़े-बड़े मुनियों ने

जैनधर्म को तीक्ष्ण कुठार कहा है। यदि चार प्रकार के देवों का पद मिल जाये तो भी जैनधर्म के बिना मोक्ष पदवी कभी नहीं मिल सकती। बड़े ऊँचे मोक्षमहल पर चढ़ने के लिए जैनधर्म सीढ़ियों जैसा है। मोक्षपद बहुत दूर है, वहाँ तक पहुँचने के लिए लम्बे रास्ते में सनातन जैनधर्म रास्ते के भोजन जैसा है। सभी धर्मों में उज्ज्वल जैनधर्म चक्रवर्ती की भातिं ऊँचे पद पर स्थित है। इसलिए निर्वाण चाहने वाले भव्यों को जैनधर्म रूपी रत्न को मस्तक पर धारण करना चाहिए'।। 45-51।।

मुनि के कहते हुए धर्म के अभाव को सुनकर श्रीदत्त राजा संसार से विरक्त हो गया। उसे राज्य, देह तथा अन्य वस्तुएँ क्षणभंगुर लगने लगीं और उसने अपना चित्त परमपद में लगाया। उसी समय उसने मुनि का तेरह प्रकार का चारित्र धारण किया और अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करते हुए दीक्षा लेने को उत्सुक हो गया। नीतिवान पुत्र सुवर्णभद्र को राज्य सौंपकर दो हजार राजाओं के साथ उसने कर्म वन का छेदने में कुठार स्वरूप और मोहान्धकार के नष्ट करने के लिए सूर्य के समान जैनी दीक्षा ग्रहण की। अन्य करोड़ों भव्यों ने श्रीदत्त के ही समान हर्षित होकर संयम ग्रहण किया।। 52-58।।

ये सभी परिग्रहत्यागी अनेक व्रत करते तपस्या में लीन होकर सुरम्य और दर्शनीय, तपस्वियों से भरे निरूपद्रव, वद्र देश के विभूषण स्वर्णाचल पर्वत पर उग्र तप करने लगे।। 59-61।।

श्री जिनेन्द्रभूषण भट्टारक के शुद्ध हृदयरूपी सिंहासन पर लक्ष्मी का निवास है और उससे वे सदा पुलकित हैं।। 62।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य महाकाव्य) में श्रीदत्त आदि की दीक्षा वर्णन करने वाला चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 14।।

चौदहवाँ अध्याय समाप्त

पन्द्रहवाँ अध्याय

संसारी प्राणियों को विस्मयकारी, भव्यों को प्रिय, कर्मवन को जलाने वाला, शुक्ल ध्यान युक्त और मोह के पर्वत को ध्वंस करने वाला बारह प्रकार का घोर तप करते हुए नंगसेन और अनंगसेन करोड़ों मुनियों के बीच मोहान्धकार को क्षय करने वाले तरुण सूर्य से शोभित थे। वे शरत्कालीन चन्द्रमा की भाँति भव्यों को आह्लादित करते थे और चार प्रकार के ज्ञान के धारक थे। तप रूपी तीक्ष्ण तलवार से घातिकर्मों का नाश कर उन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया और परम शुक्ल ध्यान की साधना कर स्वर्णाचल पर्वत से मुक्ति को पधारे।। 1-7।।

उनके मुक्ति पधारने पर कल्पवासी, ज्योतिष्क, व्यन्तर और भवनवासी देवों के सिंहासन काँप उठे और इन्द्र उन सब देवों के साथ आनन्दित होकर उत्तम-उत्तम विमानों पर आरूढ़ होकर स्वर्णगिरि के लिए चले। वहाँ पहुँचकर इन्द्रों और देवों ने सुनने में सुखद जयध्वनि की। देवों ने दुन्दुभि आदि बाजे बजाए।। 8-11।।

भव्यों में शिरोमणि सुवर्णभद्र ने अपने सिंहासन पर बैठे-बैठे देखा कि जिस दिशा में स्वर्णगिरि पर्वत है उस ओर महान प्रकाश हो रहा है। उस प्रकाश को देखकर और दुंदुभि घोषणा सुनकर राजा सुवर्णाभद्र ने मंत्रियों से इस प्रकार कहा- "मैं अत्यन्त द्युतिशील प्रकाश देख रहा हूँ और अमृत से भी अधिक मिष्ट स्वर सुन रहा हूँ। यह है क्या? कृपया आप लोग इस पर विचार करके मुझे बतावें।" मन्त्री लोग बोले कि महाराज, स्वर्णाचल पर्वत से नंगसेन आदि मुनि कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त कर आज उस स्थान पर पहुँच गए हैं जहाँ से फिर कभी लौटकर नहीं आते, जो अनन्त सुख का समुद्र है। उसे निर्वाण कहा जाता है। उसकी प्राप्ति हो जाने पर सांसारिक विषयों से छुटकारा मिल जाता है। उनकी निर्वाण पूजा के लिए देव और इन्द्र स्वर्णाचल पर आए हैं और

उनके उत्सव कर रहे हैं। मुनियों की जय बोल रहे हैं, दुंदुभि बजा रहे हैं।। 12-23।।

मन्त्रियों से इस प्रकार स्वर्णाचल और अपने पिता का वृत्तान्त सुनकर वह सर्वांगेण पुलकित हुआ और उसी क्षण स्वर्णाचल की यात्रा करने का उसने निश्चय किया। उसने यति, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं का संघ एकत्र किया और उसी प्रकार अन्य देशों के शील सिन्धु राजाओं को पत्र लिखकर निमन्त्रित किया। पत्र पढ़कर वे लोग भी शीघ्रता से वहाँ आ पहुँचे।। 24-27।।

सुवर्णभद्र ने विधिपूर्वक बड़े उत्साह से अर्हन्त भगवान की पूजा की और भेरी आदि बाजे बजवाता हुआ महा गज पर आरूढ़ होकर सबके आगे-आगे चला। रास्ते में शास्त्रोक्त रीति से विश्राम आदि करता हुआ कुछ दिनों में वह स्वर्णाचल पहुँचा। पर्वत की प्रदक्षिणा और पूजा करके वह बहुत प्रसन्न हुआ और अक्षय पुण्य कमाकर अपने घर लौटा तथा संघाधिपति कहलाया। वह धर्म पूर्वक राज्य करता था, प्रजा का पालन करता था, दयालु था और भव्य शिरोमणि था। विजितेन्द्रिय होकर देवों के समान सुख भोगता था। इस प्रकार कुछ काल बीता ही था, कि एक दिल महल के ऊपरी भाग में सिंहासन पर बैठे-बैठे उसने सुन्दर और नवीन मेघ को देखा। वह मेघ दूसरे क्षण विलीन हो गया और आकाश स्वच्छ हो गया। राजा यह देख कर विरक्त हो गया। उसने विचारा कि यह संसार भी मेघ के ही समान अस्थिर है और इसमें परिश्रम करना व्यर्थ है।। 28-37।।-

सांसारिक भोग उसे विष से भी कड़वे अनुभव होने लगे और वह बार-बार अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करने लगा। उसने मुनियों के साथ अगृहीत संयम स्वीकृत किया। वन में अनेक परीषह सहे, मोक्ष प्राप्ति के प्रति उत्साह होने के कारण शीत, वत, वर्षा, गर्मी आदि को भी सहन किया।। 38-41।।

सांसारिक कार्यों में लोग व्यर्थ ही दुःख सहते हैं, मोक्ष की प्राप्ति के लिए कष्ठ उठाना तो उचित मालूम होता है। कर्म अटवी के पूर्व भाग में तो अत्यन्त दुःख है किन्तु पर भाग में अनन्त सुख है। जिन्होंने दुःख और सुख दोनों जान लिए वे तो पर भाग में पहुँचने के लिए यत्न करते हैं। तप के द्वारा ये उस घोर अटवी में प्रवेश करते हैं और शीतादि कण्टकों से होने वाली व्यथा को सहते हुए पर भाग में पहुँच कर तप के बल से ज्ञान प्राप्त कर निश्चित ही अनन्त सुख प्राप्त करते हैं।। 42-46।।

तप की तीव्र आग से घातिकर्मों का घात कर अनन्त चतुष्टय और केवल ज्ञान प्राप्त कर सुवर्णभद्र मुनि पाँच हजार मुनियों के साथ शुक्ल ध्यान धारण कर परमानन्द रूप सिद्ध गति को प्राप्त हुए। इसी प्रकार चन्द्रप्रभ भगवान के समय से महावीर स्वामी के समय तक साढ़े पाँच करोड़ मुनि स्वर्णाचल पर्वत से सिद्ध हुए। इस प्रकार स्वर्णाचल की परम्परा की कथा मुनियों ने कही है, वह सदा स्मरणीय है।। 47-52।।

जिस स्थान से एक भी मुनि निर्वाणपद को प्राप्त करें उसे सिद्ध क्षेत्र कहा जाता है और सिद्धक्षेत्र की वन्दना से मनुष्यों को निश्चय ही अनन्त फल की प्राप्ति होती है। फिर जिस स्थान से साढ़े पाँच करोड़ मुनि सिद्ध हुए, उस क्षेत्र के स्मरण, वन्दना, दर्शन, परिक्रमा और पूजा की महिमा कौन कह सकता है? स्वयं सरस्वती भी कह सकने में समर्थ नहीं है फिर अन्य पंडितों की क्या बात।। 53-58।।

भव्य जीवों, यदि निर्वाण की कामना है तो स्वर्णाचल का ध्यान करो, यात्रा करो, दर्शन और वन्दना करो, परिक्रमा और पूजा करो। विषयों का त्याग करना कठिन है। स्वर्णाचल की पूजा से यह कार्य सरलता से हो जाता है इसलिए वह पर्वतराज पूज्य है।। 59-61।।

श्री जिनेन्द्रभूषण यति के हृदय में सुबुद्धि रहे, सुख में अमृत के समान मीठी वाणी रहे, आँखों में जिनेन्द्र रहें और करमकमलों में यथेच्छ दान की शक्ति रहे।। 62।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री नंग अनंग कुमार चरित्र (श्री स्वर्णाचल माहात्म्य) में श्री नंगसेन आदि मुनियों के मुक्तिगमन का वर्णन करने वाला पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 15।।

पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त

"धर्मध्यान करना जरूरी क्यों?"

समाधान :- संसार का प्रत्येक प्राणी सुख-शांति चाहता है, वह सुख-शांति शाश्वत स्वभाव की प्राप्ति में/सिद्धत्व की प्राप्ति में है, सिद्धत्व की प्राप्ति कर्म क्षय से ही संभव है, कर्मों का क्षय सम्यक् रत्नत्रय की साधना से होता है, रत्नमय की स्थिति-सुखी जीवन के लिए आत्मशांति के लिए परमावश्यक है।

जिस प्रकार मानव शरीर को जीवंतता प्रदान करने के लिए भोजन-पानी, श्वासोच्छ्वास, प्रकाश आदि आवश्यक है, उसी प्रकार सुख व शांति के मार्ग में गतिशील आत्मा की जीवंतता के लिए धर्मध्यान भी परमावश्यक है।

साभार
आधुनिक समस्याएं प्रमाणिक समाधान
रचियता आचार्य वसुनंदी मुनि

सोलहवाँ अध्याय

इस प्रकार माहात्म्य युक्त, वद्र देश का भूषण महापुण्यकारी सिद्ध क्षेत्र सोनागिरि है। भव्य जीव उसे नमस्कार करते हैं और उसमें नाना प्रकार के चैत्यालय हैं। उसके चिन्तन से मन शुद्ध होता है, धारण से बुद्धि शुद्ध होती है, सुनने में कान शुद्ध होते हैं, उसके सम्बन्ध में चर्चा करने से मुख शुद्ध होता है। उसकी वन्दना करने से मस्तक शुद्ध होता है, पूजन करने से हाथ शुद्ध होते हैं और परिक्रमा करने से पैर शुद्ध होते हैं। उसकी यात्रा करने वाला यदि पापों से बचकर उत्साहपूर्वक यात्रा करे तो उसे अवश्य मुक्ति होती है।। 1-5।।

भव्य लोग चाहें तो वे दूर के हों या निकट के, ऐसे दर्शनीय पर्वत की अपने साथियों के साथ यात्रा अवश्य करें, इससे इन्हें सर्वांगेण प्रसन्नता होती है। स्वर्णाचल की यात्रा निर्वाण रूपी वृक्ष का बीज है। कैलाश, गिरनार, चंपापुरी, पावापुरी तथा अन्य सिद्ध क्षेत्रों की यात्रा का जो सर्वप्रकार की सिद्धि देने वाला फल बताया गया है, उसी प्रकार स्वर्णाचल की तीन बार वन्दना करने से भी फल प्राप्त होता है ऐसा आचार्यों ने कहा है।। 6-11।।

जो स्वर्णाचल की इष्टप्रदायिनी, पापों का नाश करने वाली तथा पुण्य को बढ़ाने वाली यात्रा भावपूर्वक करेगा उसे बत्तीस करोड़ प्रोषधोपवास का फल प्राप्त होगा, यह निश्चित है अतः कर्म को जानने वाले व्यक्तियों को स्वर्णाचल की यात्रा अवश्य करनी चाहिए।। 12-14।।

मनुष्य का शरीर क्षण भंगुर है। पुण्य कर्म करने से ही कुछ स्थिरता आ सकती है। फिर तो यह मोक्ष की प्राप्ति का द्वार है। देव और इन्द्र मोक्ष की प्राप्ति के लिए मनुष्य शरीर की कामना करते हैं। साधु जनों को चाहिए कि इसे प्राप्त कर जब तक शरीर में प्राण हैं, पुण्य कर्म करें क्योंकि प्राण चले जाने पर यह शरीर लकड़ी, लोहे और पत्थर के ही समान जड़

हो जाता है। मस्तक नवाकर जिनेन्द्र भगवान को प्रणाम करें, आँखों से उनके दर्शन करें और उनका पुण्य चरित्र सुनें। हाथों से भगवान की पूजा करें, मन से ध्यान करें और बुद्धि से उनका चिन्तन करें।। 15-19।।

उसी प्रकार सिद्धक्षेत्रों की यात्रा करना श्रेयस्कर है। इन्हीं कार्यों से इस शरीर की सफलता है, अन्यथा रत्न को हाथ में पाकर गिरा देना ही है। ऊपर कहे हुए कर्म करने वाले व्यक्ति स्तुत्य हैं अन्य निन्दनीय है। इसलिए भव्यों की विधिपूर्वक स्वर्णाचल की यात्रा करना चाहिए।।20-23।।

इसकी वन्दना करने पर पुत्र की अभिलाषा करने वालों को सत्पुत्र का लाभ होता है, धन के इच्छुकों को धन मिलता है, धर्मार्थियों को धन और कामियों की कामना की पूर्ति होती है। विशेष क्या कहें मुमुक्षुओं को मोक्ष भी मिलता है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो स्वर्णाचल की वन्दना और पूजा करने वालों को न मिल सके। ऐसे लोगों की देव लोग भी पूजा करते हैं।। 24-27।।

सामर्थ्य रहने पर यथाशक्ति चतुर्वर्ण के फल देने वाली स्वर्णाचल पर्वत की यात्रा का फल प्राप्त करने की अभिलाषा हो तो पवित्र स्थान में श्री भगवान जिनेन्द्र की स्थापना करके अनेक उत्सव करके भव्यों को बुलाकर वाचक को और कथा को शुभासन पर बैठाकर स्वर्णाचल की कथा सुनना चाहिए। वाचक बुद्धिमान हो, श्लोक के भाव के समझने वाला हो और अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण कर सके।। 28-34।।

ऐसा करने से यात्रा के बिना ही यात्रा का फल प्राप्त होता है किन्तु यह विधि केवल असमर्थ लोगों के लिए है। सामर्थ्य रहने पर तो यात्रा को करना चाहिए और माहात्म्य भी सुनना चाहिए जो भक्ति भाव से स्वर्णाचल माहात्म्य को सुनेगा उसके सभी पाप निश्चय से भस्म हो जाएँगे। उसके धर्म की वृद्धि होगी और कल्याण का संचय होगा। उसकी मनोभिलाषाएँ फलित होंगी, धन-धान्य, हाथी-घोड़ों की समृद्धि होगी।

जो यह कथा प्रेम से स्नान-ध्यान करके वाँचेगा उसकी जिह्वा पर सरस्वती वास करेगी। यह पवित्रात्मा संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा और उसके शरीर के स्पर्श से अन्य लोग भी पवित्र हो जाएँगे।। 35-41।।

श्री मूलसंघ और बलात्कार गण विश्वदीप श्री कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में नन्द आम्नाय में जगत के भूषण श्री भट्टारक जगद्भूषण हुए। उनकी पवित्र वाणी धर्मशास्त्र का प्रकाश करने वाली थी और पढ़ने से गङ्गा की भाँति मुखकमल को पवित्र कर देती थी। उनके पट्ट में विश्व भूषण भट्टारक हुए। वे भी ज्ञानियों में श्रेष्ठ थे और ज्ञानी उनकी सेवा करते थे। इसके बाद श्रीमान् देवेन्द्र भूषण हुए। उनमें भी भट्टारक के सभी गुण विद्यमान थे।। 42-46।।

उसके बाद धर्मोपदेशी सुरेन्द्रभूषण ने गद्दी सुशोभित की। इन भट्टारकों में विश्वभूषण के शिष्य ब्रह्मचारी विनयचारी थे, उन्हीं के समान उनके शिष्य हर्ष सागर थे और इनके गुरुभाई पण्डित हरिकृष्ण थे। उनके शिष्य जीवनराम और जीवनराम के शिष्य हेमचन्द्र थे। इनमें से विश्वविख्यात पुण्यक्षेत्र सूरपुर में - जिसके दर्शन, वन्दना अथवा जहाँ निवास करने से पूर्वोपार्जित कर्मों का संहार होता है, जो नेमिनाथ की पवित्र भूमि है, जहाँ यमुना का पश्चिम प्रवाह है और ब्राह्मण आदि उच्च जातियों का जहाँ निवास है - श्रीब्रह्म हर्षसागर के पुत्र ज्ञानवान, गुणवान, दयावान, पुण्यवान, भट्टारक जिनेन्द्रभूषण भव्य जनों के साथ रहते हैं।। 47-55।।

उन्होंने यमुना के किनारे बहुत सा द्रव्य व्यय करके सुन्दर चैत्यालय बनवाया है। उन्हीं जिनेन्द्र भूषण की आज्ञा से अहेर के रहने वाले कान्यकुब्ज कुल के दीक्षित देवदत्त ने यह काव्य रचा है। यह जैन शासन की प्रामाणिकता की ओर लोगों को सन्मुख करेगा। भव्य लोग इसे भक्तिभाव से पढ़ें और सुनें।। 56-59।।

शब्दसागर में किस से भूल नहीं होती। यदि कहीं कोई शब्द व्यतिक्रम हुआ हो तो धीर पुरुष कृपा करके अपनी समझ से उसे सुधार लें।। 60-61।।

दूर-दूर देश के राजा और चतुर्वर्ण के सज्जन पुरुष जिसे अमल सद्गुणों के कारण सम्मानित करते हैं, जिसकी बुद्धि नये-नये पुराण और काव्यों में लगी रहती है, वह जिनेन्द्रभूषण इस लोक में चिरंजीवी हों।। 62।।

श्री जिनेन्द्रदेव जिनेन्द्रभूषण की मनोवांछा पूरी करें।। 63।।

इस प्रकार आचारांग में श्री भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अनुक्रम में श्री भट्टारक विश्वभूषण के पट्टाभरण और श्री ब्रह्मचारी हर्षसागर के पुत्र श्री भट्टारक जिनेन्द्रभूषण के उपदेश से श्रीमान् देवदत्त दीक्षित कृत श्री (स्वर्णाचल माहात्म्य) में माहात्म्यफल का वर्णन करने वाला सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।। 16।।

श्री सम्वत् 1845 मार्ग,शीर्ष शुक्ल 4 को श्री स्वर्णाचल माहात्म्य समाप्त हुआ।

भट्टारक जिनेन्द्रभूषण द्वारा दिया गया उपदेश प्रसादराज सेठ को आनन्द दे।

ग्रन्थ समाप्त

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, दीक्षा सम्राट, आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी महाराज द्वारा रचित, संपादित साहित्य

1. निजअवलोकन
2. देषभूषण कुलभूषण चरित्र
3. हमारे आदर्श
4. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
5. नंगानंग कुमार चरित्र
6. धम्म रसायण
7. मौनव्रत कथा
8. सुदर्शन चरित्र
9. प्रभंजन चरित्र
10. सुरसुन्दरी चरित्र
11. जिनश्रमण भारती
12. सर्वोदयी नैतिक धर्म
13. चारुदत्त चरित्र
14. करकण्डु चरित्र
15. रयणसार
16. नागकुमार चरित्र
17. सीता चरित्र
18. योगामृत भाग–1
19. योगामृत भाग–2
20. आध्यात्मतरंगिणी
21. सप्त व्यसन चरित्र
22. वीर वर्धमान चरित्र भाग–1
23. वीर वर्धमान चरित्र भाग–2
24. भद्रबाहु चरित्र
25. हनुमान चरित्र
26. महापुराण भाग–1
27. महापुराण भाग–2
28. योगसार–भाग–1
29. योगसार–भाग–2
30. भव्य प्रमोद
31. सदार्चन सुमन
32. तत्त्वार्थ सार
33. कल्याण कारक
34. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
35. आराधनासार
36. यशोधर चरित्र
37. व्रतकथा संग्रह
38. तनाव से मुक्ति
39. उपासकाध्ययन भाग–1
40. उपासकाध्ययन भाग–2
41. रामचरित्र भाग–1
42. रामचरित्र भाग–2
43. नीतिसार समुच्चय
44. आराधना कथा कोश भाग–1
45. आराधना कथा कोश भाग–2
46. आराधना कथा कोश भाग–3
47. दशामृत (प्रवचन)
48. सिन्दूर प्रकरण
49. प्रबोध सार
50. शान्तिनाथपुराण भाग–1
51. शान्तिनाथ पुराण भाग–2
52. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
53. सम्यक्त्व कौमुदी
54. धर्मामृत भाग–1
55. धर्मामृत भाग–2
56. पुण्य वर्द्धक
57. पुण्यास्रव कथा कोश भाग–1
58. पुण्यास्रव कथा कोश भाग–2
59. चौंतीस स्थान दर्शन
60. अकंपमती
61. सार समुच्चय
62. दान के अचिन्त्य प्रभाव
63. पुराण सार संग्रह भाग–1
64. पुराण सार संग्रह भाग–2
65. आहार दान
66. सुलोचना चरित्र
67. गौतम स्वमी चरित्र
68. महीपाल चरित्र
69. जिनदत्त चरित्र
70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
71. चेलना चरित्र
72. धन्यकुमार चरित्र
73. सुकुमाल चरित्र
74. कुरलकाव्य
75. धर्म संस्कार भाग–1
76. प्रकृति समुत्कीर्तन
77. भगवती आराधना
78. निर्ग्रंथ आराधना
79. निर्ग्रंथ भक्ति
80. कर्मप्रकृति
81. पूजा–अर्चना
82. नौ–निधि
83. पंचरत्न
84. व्रताधीश्वर–रोहिणी व्रत
85. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
86. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
87. तत्त्वार्थ सूत्र
88. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
89. छत्रचूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)
90. धर्म संस्कार भाग–2
91. गागर में सागर
92. स्वाति की बूँद
93. सीप का मोती (महावीर जयन्ती प्रवचन)
94. भावत्रय फलप्रदर्शी
95. सच्चेसुख का मार्ग
96. तनाव से मुक्ति–भाग–2

97. कर्म विपाक
98. अन्तर्यात्रा
99. सुभाषित रत्न संदोह
100. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
101. पंचपरमेष्ठी विधान
102. श्री शान्तिनाथ भक्तामर, सम्मेदशिखर विधान
103. मेरा संदेशा
104. धर्म बोध संस्कार 1, 2, 3, 4
105. सप्त अभिशाप
106. दिगम्बरत्व : क्या, क्यों, कैसे?
107. जिनदर्शन से निजदर्शन
108. निश भोज त्याग : क्यों?
109. जलगालन : क्या, क्यों, कैसे?
110. धर्म : क्या, क्यों कैसे ?
111. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
112. मीठे प्रवचन 1, 2, 3, 4
113. कल्याणी
114. कलम–पट्टी बुद्धिका
115. चूको मत
116. खोज क्यों रोज–रोज
117. जागरण
118. णंदिणंद सुत्तं
119. जय बजरंग बली
120. शायद यही सच है
121. डॉक्टरों से मुक्ति
122. आ जाओ प्रकृति की गोद में
123. भगवती आराधना
124. चैन की जिन्दगी
125. धर्मरत्नाकर
126. हाइकू
127. स्वप्न विचार
128. क्षरातीत अक्षर
129. वसुनंदी उवाच
130. चन्द्रप्रभ चरित्र
131. चन्द्रप्रभ विधान
132. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
133. महावीर पुराण
134. वरांग चरित्र
135. रामचरित्र (पुनः प्रकाशित)
136. विषापाहार स्तोत्र
137. पाण्डव पुराण
138. हीरों का खजाना
139. तत्त्वभावना
140. सम्राट चन्द्रगुप्त
141. जीवन का सहारा
142. धर्म की महिमा
143. जिन कल्पि सूत्रम्
144. विद्यानंद उवाच
145. सफलता के सूत्र
146. तत्त्वज्ञान तरंगनी
147. जिन कल्पि सूत्रम्
148. दुःखों से मुक्ति
149. णमोकार महार्चना
150. समाधि तंत्र
151. सुख का सागर चालीसा
152. पुरूषार्थ सिद्धीउपाय
153. सुशीला उपन्यास
154. तैयारी जीत की
155. बोधि वृक्ष
156. शान्तिनाथ विधान
157. दिव्यलक्ष्य
158. आधुनिक समस्याऐं प्रमाणिक समाधान
159. भरतेश वैभव
160. वसुऋद्धि
161. संस्कारादित्य
162. मुक्तिदूत के मुक्तक
163. श्रुत निर्झरी
164. जिन सिद्धांत महोदधि
165. उत्तम क्षमा
166. मान महा विष रूप
167. तप चाहें सुर राय
168. जिस बिना नहिं जिनराज सीजे
169. निज हाथ दीजे साथ लीजे
170. परिग्रह चिंता दुःख ही मानो
171. रंचक दगा बहुत दुःख दानी
172. लोभ पाप को बाप बखाना
173. सतवादी जग में सुखी
174. उत्तम ब्रह्मचर्य
175. पार्श्वनाथ पुराण
176. गुण रत्नाकर
177. नारी का धवल पक्ष
178. खुशी के आंसू
179. आज का निर्णय
180. गुरू कृपा
181. तत्त्व विचारो सारो
182. अजितनाथ विधान
183. त्रिवेणी
184. आईना मेरे देश का
185. न मैं चुप हूँ न गाता हूँ
186. मूलाचार प्रदीप
187. न पिटना बुरा है न मिटना
188. गुरूवर तेरा साथ
189. सदगुरू की सीख
190. णंदिणंद सुत्तं

प्रेम में :–
फर्श से अर्श तक
स्वास्थ बोधामृत
कुछ कलियाँ कुछ फूल
प्रभाती संग्रह
आदिनाथ विधान
मुनिसुव्रतनाथ विधान
नेमिनाथ विधान
नवग्रह विधान
आराधना समुच्चय
आदि

प. पू. आचार्य श्री 108
विद्यानंद जी मुनिराज

कृपया ध्यान दें

प. पू. आचार्य श्री 108
वसुनन्दी जी मुनिराज

आचार्यों के अनुसार जो ज्ञान के साधन धार्मिक पुस्तकें, शास्त्र आदि को जो पढ़ता है तथा दूसरों को पढ़ने के लिए देता है उसके ज्ञानावरणी कर्म का तीव्र क्षयोपक्षम होता है जो कि आगे चलकर केवल ज्ञान में कारण बनता है। अतः धार्मिक पुस्तकों और शास्त्र आदि को पढ़ाने के बाद दूसरों को पढ़ने के लिए दें अथवा मंदिर जी में रख दें ताकि दूसरे भी उसका लाभ ले सकें।